कृष्णदास संस्कृत सीरीज: २६

श्रीमदप्पयदीक्षितविरचिता

आत्मार्पणस्तुतिः

श्रीशङ्करनारायणकृत 'भावलेशप्रकाश' टीका-सहित-

'चन्द्रिका' हिन्दीभाषान्तरोपेता

सम्पादक तथा भाषान्तरकार

डॉ० कामेश्वरनाथ मिश्र

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

२९

श्रीमदप्पयदीक्षितविरचिता

आत्मार्पणस्तुतिः

श्रीशङ्करनारायणकृत 'भावलेशप्रकाश' टीका-सहित-

'चन्द्रिका' हिन्दीभाषान्तरोपेता

सम्पादक तथा भाषान्तरकार :

डॉ० कामेश्वरनाथ मिश्र

रीडर, संस्कृतविभाग

केन्द्रीय उच्च तिब्बती-शिक्षा संस्थान,

सारनाथ, वाराणसी

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी-२२१००१

१९८२ ई०

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, २०३९
मूल्य रू० : ४०-००

© कृष्णदास अकादमी
पो० बा० ११८
चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१
(भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : ६३१४५

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES

29

ĀTMĀRPAṆASTUTIḤ

OF

APPAYA DĪKṢITA

with the

Bhāvaleśaprakāśa Sanskrit Commentary

By

Sri Śaṅkaranārāyaṇa

Edited with

'Candrika' Hindi Translation, Introduction and appendices

By

Dr. KAMESHWAR NATH MISHRA

Reader in Sanskrit

Central Institute of Higher Tibetan Studies

Sarnath, Varanasi

KRISHNADAS ACADEMY, VARANASI

1982

Publisher : Krishnadas Academy, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi
Edition : First, 1982
Price Rs. : 40–00

© KRISHNADAS ACADEMY

Oriental Publishers & Book–Sellers
Post Box 118
Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi–221001
(INDIA)

Also can be had from
Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
POST BOX 8
Varanasi–221001 (India)
Phone : 63145

द्वारकाशारदापीठ तथा ज्योतिर्मठ दोनों के जगद्गुरुशङ्कराचार्य

अनन्तश्रीविभूषित स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती महाराज

के चरणकमलों में प्रणतिपुरस्सर समर्पित

पुरोवाक्

प्रसन्नता है कि आज 'भावलेशप्रकाश' व्याख्या के साथ 'आत्मार्पणस्तुति' प्रकाशित हो रही है। मूल स्तुति आंशिक अथवा पूर्ण रूपों में पाठ्य अथवा अपाठ्य प्रकाश में यदा-कदा आयी है। शिवानन्द की टीका भी दृष्टिगोचर हुयी, किन्तु 'भावलेशप्रकाश, की अपनी ही कथा है।

मूल श्लोकों के साथ इस टीका की पाण्डुलिपि मुझको अकस्मात् एक रद्दी-विक्रेता के पास मिल गयी थी। पढ़ने पर आकर्षक लगी और उसकी विशदता, शास्त्रीयता, उद्धरण-बहुलता शैवाचारनिरूपण की संगति आदि को देखकर इसके आचार्य अप्पय द्वारा ही रचित होने का भ्रम हुआ, किन्तु टीकाकार के स्पष्ट उल्लेखों से वह दूर हो गया। संभवतः आचार्य दीक्षित स्वयं भी इससे अच्छी व्याख्या नहीं लिखते। मैंने विभिन्न स्थानों से प्रकाशित पाण्डुलिपियों के विवरणों को देखा, किन्तु इस टीका और टीकाकार दोनों का नामोल्लेख तक नहीं मिला। स्तुति का मूल सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में तीन प्रतियों में (क्र. सं. १७४३५, १८४९७, २२६२२) मिला जिससे मैंने पाठ का परितुलन किया। टीका की एकमात्र प्रति मेरे पास थी, अतः उसी को सुवाच्य रूप देकर, इतिहास, पुराण तथा अन्य उपलब्ध ग्रन्थों से उद्धरणों को मिलाया और अन्त में एक नयी पाण्डुलिपि तैयार की। इसे मैं प्रकाशित कराना चाहता था।

यह बात १९७६-७७ ई० की है। संयोग से प्रकाशन की चर्चा चौखम्बा संस्कृत सीरीज के संचालकों से हुयी और उन्होंने पाण्डुलिपि लेकर यथावसर प्रकाशित करने का वचन दिया। आज वही अश्रुतपूर्व, अप्रकाशित किन्तु अतीव महत्वपूर्ण टीका श्लोकों के हिन्दी अनुवाद तथा परिशिष्टों के साथ आपके हाथों में है।

अप्रकाशित ग्रन्थों के प्रकाशन के लिये विकल रहने वाले चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस के संचालक तथा अपने गो०

पूज्य पिता के नाम पर "कृष्णदास अकादमी" के संस्थापक श्री विट्ठलदासगुप्त तथा उनके अनुज श्री ब्रजमोहनदास गुप्त तो धन्यवाद के पात्र हैं ही, मैं आचार्य पं० श्री रामचन्द्र झा जी का भी हृदय से आभारी हूँ जिनके प्रेरक संरक्षण में चौखम्बा-परिवार से मेरी कृतियाँ प्रकाश में आती रहीं। मैं अपने श्रद्धेय गुरुवर डा० रामचन्द्र द्विवेदी, आचार्य एवं अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, को प्रणाम किये बिना नहीं रह सकता, जिनके कुशल अध्यापन से ही मुझको शैवशास्त्रों में प्रवेश का साहस हुआ। अपनी अन्य कृतियों की भांति इसे भी मैं प्रणति-ततिपुरस्सर समर्पित करता हूँ द्वारकाशारदापीठ तथा ज्योतिष्पीठ दोनों के जगद्गुरु शङ्कराचार्य अनन्तश्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती महाराज के श्रीचरणों में, जिनका आशीर्वाद ही मेरा पाथेय है।

सारनाथ, वाराणसी
विजयादशमी,
२७ अक्टूबर १९८२

विनीत–
कामेश्वरनाथ मिश्र

भूमिका

आचार्य अप्पय दीक्षित सर्वतोमुखी प्रतिभा वाले महान् दार्शनिक, वैयाकरण, काव्यशास्त्री तथा कवि थे। इनके सभी ग्रन्थों तथा उनकी यावदुपलब्ध स्वोपज्ञवृत्तियों से इनके प्रकाण्डपाण्डित्य, शास्त्रपारगामिता, पुराणादि धार्मिकग्रन्थों पर अनुपम अधिकार आदि का पता चलता है। विविध देवों तथा देवियों को लक्ष्य करके लिखे गये पद्यों में दिये गये सन्दर्भों से जहाँ एक ओर छन्दों की रचना-प्रवीणता का परिचय होता है, वहीं दूसरी ओर इतिहास, पुराण आदि शास्त्रों के प्रत्येक श्लोक की मर्मज्ञता भी स्फुट होती है।

अभिधान-वैविध्य—इनका नाम अप्प दीक्षित[1], अप्पै दीक्षित,[2] अप्पयदीक्षित[3] तथा अप्पय्यदीक्षित[4] रूपों में इनके स्वयं के ग्रन्थों, स्वोपज्ञव्याख्याओं, शिलालेख अथवा ताम्रपत्रों, अन्यों द्वारा विरचित इनकी कृतियों की व्याख्याओं, अथवा प्रसङ्गतः अन्यों द्वारा किये गये इनके उल्लेखों में मिलता है। अतः इनका वास्तविक नाम क्या था, इस विषय में भ्रम हो सकता है।

उक्त सन्दर्भ में स्व० प्रोफेसर श्री को० अ० सु० अय्यर[5] का विचार सभी भ्रान्तियों का निर्मूलन कर देता है। प्रो० अय्यर के अनुसार

---

१. (क) अप्पदीक्षितसुधीविनिर्मिते मध्वदर्शनमुखापमर्दने। मध्वतन्त्रमुखमर्दनम् ३४।

(ख) इत्यप्पदीक्षितकृतौ मध्वमतारम्भमर्दनग्रन्थे। वही ४२॥ द्रष्टव्य-वही ५२, ५५, ५८, ६०, ६५॥

२. अडयपलम् शिलालेख (नं. ३९५, सन् १९११ में संगृहीत) में 'अप्पै' शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है।

३. भावलेशप्रकाशव्याख्या-श्लोक ३।

४. रघुनाथवर्मा के लौकिकरत्नाकर में—'अत एव श्रीमदप्पयदीक्षितैः शिवद्वेषिवैष्णवंमन्यमानैः·········। श्रीमदप्पय्यदीक्षितेन्द्रग्रन्थावली-सीरीज-३, पृ. ४०-!! ॥

५. लेखक की व्यक्तिगत भेंट फरवरी ११, १९७७ के आधार पर।

मूल शब्द 'अप्प' है जिसका अर्थ क्षेत्रीयभाषा में 'पिता' होता है। इसी का लौकिक व्यवहार में 'अप्पै' और 'अप्पय' हो गया। वही क्रमशः छन्दोयोजना, मुखसुख आदि के कारण 'अप्पय्य' बन गया। यही मत संगत है। अन्तर नगण्य से हैं क्योंकि संस्कृत में व्यक्ति के नामों का पर्याय भी प्रचलन में रहा है, यथा प्रभाकर मीमांसक के लिये 'तिमिरारि', कणाद के लिये 'कणभक्ष', अक्षपाद के लिये 'अक्षचरण' आदि[१]। अप्पयदीक्षित के ग्रन्थों के सम्पादकों ने प्रायः 'अप्पय' अथवा 'अप्पय्य' का ही प्रयोग किया है।

वंशपरम्परा—अप्पय दीक्षित का वंश प्रख्यात विद्वानों का था। उनके पितामह आच्चान दीक्षित अर्थात् आचार्यदीक्षित तो विख्यात थे ही; इनके पुण्यश्लोक पितृचरण श्रीरङ्गराजाध्वरिन् थे जिनका विशेष वैदुष्य अप्पयदीक्षित के पाण्डित्य का निमित्त बना। उनसे ही इन्होने समस्तशास्त्रों में प्रवीणता प्राप्त की। अपने पितृचरणों का शुभस्मरण यह सदा करते रहते हैं। यथा—

विद्वद्गुरोर्विहितविश्वजिदध्वरस्य श्रीसर्वतोमुखमहाव्रतयाजिसूनोः।
श्रीरङ्गराजमखिनः श्रितचन्द्रमौलिरस्त्यप्पदीक्षित इति प्रथितस्तनूजः ॥[२]

इनको अपने 'महान्' एवं 'उत्तम कुल' का स्मरण सदा रहा है।[३] अप्पयदीक्षित के उत्तमकुल, शिवांशावतारत्व, वासस्थान, जन्मकाल, मातुलगृहावास आदि के विषय में 'आत्मार्पणस्तुति' के सप्तमश्लोक की इनके ही वंशोत्पन्न शिवानन्द यति की 'बालबोधिनी' व्याख्या में प्रचुर सामग्री मिलती है। शिवानन्द यति ने अन्यस्रोतों का भी उल्लेख अपनी टीका में किया है, अतः सम्बद्ध अंश यथावत् उद्धृत किया जा रहा है। 'उत्पद्येति। स्मरहर! अत्र 'महति' इति विशेषणेन अस्मिन् कुले श्रीशिवांशविद्येश्वरावतारः सूच्यते। तथा। श्रीनीलकण्ठमखिनः-

'कृतदीक्षोऽघोरमुखे कुलकूटस्थो भरद्वाजः।
विद्येश्वरेषु कश्चन पितामहो न इति विस्रम्भः ॥'

इति।

---

१. सांख्यतत्त्वकौमुदी—नवमकारिका

२. मध्वतन्त्रमुखमर्दनम्–६५। यह इनके अन्यग्रन्थों में भी पाया जाता हैं। इसका उत्कीर्णन इन्होने 'अडपलयम्' के शिलालेख में भी कराया था। द्रष्टव्य १९११ ई. का शिला० लेख सं० ३९५.

३. आत्मार्पणस्तुतिः–श्लोक ७।

'श्रीकण्ठोऽवततार यस्य वपुषा कल्कयात्मनेवाच्युतः
श्रीमानप्पयदीक्षितः स जयति श्रीकण्ठविद्यागुरुः ॥'

इति च। ज्योतिर्विदस्त्वेवमाहुः—

'वीणातत्त्वज्ञसंख्यालसितकलिसमाभाक् प्रमातीचवर्षे
कन्यामासे तु कृष्णप्रथमतिथियुतेऽप्युत्तरप्रोष्ठपाद्भे।
कन्यालग्नेऽद्रिकन्यापतिरमितदयाशेवधिर्वैदिकेषु
श्रीगौर्यै प्राग्यथा ह स्म समजनि विरिञ्चीशपुर्यां कलेशः ॥'

इति।

अयमर्थः—वीणातत्त्वज्ञेति, पञ्चाक्षराणि, तत्र ज्ञकारोऽनर्थकः। प्रातिलोम्येन तयुक्तवकारस्य चतुःसहस्र-संख्या, केवलतकारस्य षट्-शतम्, णेति पञ्चाशत्, वीति चतुःसंख्या, आहत्य चतुःपञ्चाशत्संयुत-षट्शतोत्तरचतुःसंख्याके कल्यब्दे प्रमातीचवर्षे कन्यामासे कृष्णपक्षे प्रथमातिथौ उत्तरप्रोष्ठपदनक्षत्रे कन्यालग्ने श्रीकलेशः श्रीशिवावरणस्थाष्ट-विद्येश्वराणां मध्ये सप्तमस्थानाधिपः श्रीकण्ठविद्येश्वर इत्यर्थः। प्राक् कल्पान्तरे श्रीपरमेश्वरः वैदिकेषु अमितदयाशेवधिः सन श्रीगौरीदेव्यै यथा ह स्म अवादीत्, तथैव, विरिञ्चीशपुर्यां, विरिञ्चिपुरे समजनि, संजात इत्यर्थः।

यद्यपि श्रीमद्दीक्षितचरणस्य पितृपितामहपरम्पराया वासस्थानम् आरणिसमीपवर्ति अडयप्पलमिति अग्रहार एव, तथापि विरिञ्चिपुरे मातुलमन्दिरमासीदिति किम्वदन्त्या अवगम्यते, जन्मापि तत्रैवेति पर्यवस्यति। श्रीशिवोपदेशसूक्तिः उत्तरत्र विवरिष्यते। तेषां जन्म-लग्नस्थितिस्तु—

'लग्ने रवीन्दुसुतयोर्मकरे च मान्दौ मीने शशिन्यथ वृषे रविजे च राहौ।
चापे गुरौ क्षिति सुते मिथुने तुलायां शुक्रे शिखिन्यलिगते शुभलग्न एवम् ॥'

इति एवंभूते शुभलग्ने श्रीकण्ठविद्येशोक्तरीत्या विरिञ्चिपुरे मातुल-गृहे समजनीति पूर्वेण सम्बध्यते। तथा च श्रीशिवसूक्तिः शिवरहस्ये नवमांशे अष्टमाध्याये कलिविशेषकथने श्रीभगवत्पादावतारसूक्तिः—

'म्लेच्छाचारपराः सर्वे दरिद्राश्च द्विजातयः।
भविष्यन्त्यल्पमतयो यतिस्तत्र भविष्यति ॥
शिवे मदंशसंभूतः शंकरः शांकरोत्तमः।
चतुर्भिः सह शिष्यैश्च कलाववतरिष्यति ॥

तस्मै चोपनिषद्विद्या मया दत्ता महेश्वरि।
भूमौ पाषण्डषण्डानां खण्डनं स करिष्यति॥
कलावेव महादेवि हरदत्ताभिधो द्विजः।
अशैवदण्डनार्थाय भविष्यति महीतले॥
दीक्षितोऽपि भवेत् कश्चिन्मदंशो भूसुरोऽम्बिके।
भासुराचारनिरतः शैवश्छन्दोगवंशजः॥
शैवशास्त्रं तदा भूमौ लुप्तं विस्तारयिष्यति।
अन्येऽपि भक्ता देवेशि चेरे चोले च पाण्ड्यके॥
भविष्यन्ति महाभक्ता मयि सर्वासु जातिषु।
सुन्दरो ज्ञानसम्बन्धस्तथा माणिक्यवाचकः।
तेषु मुख्यास्त्रयोऽप्येते ....॥

इत्यादि प्रपञ्च्यते। तस्मात् शिवांशावतारहेतुकतया महतीति विशेषं युक्तमित्यर्थः। किं च उत्तमानाम्, उत्कृष्टतमानाम्, श्रीरङ्गराजयज्व-प्रभृतिकगोत्रर्षिपर्यन्तानां श्रौतकर्मानुष्ठानवरिष्ठानां, शिवैकशरणानाम्, अस्मिन् कुले...उत्पद्यापि श्रीरङ्गराजाध्वरिणः पुत्रभावेन जनित्वापीत्यर्थः।

अत्रापि शिवरहस्ये—'शैवश्छन्दोगः' इति परमेश्वरानुग्रहसूक्त्या च श्रैष्ठ्यमस्त्येवेत्यर्थः।

ननु श्रीमद्दीक्षितोऽयं शिवांशावतारः, कार्वेटिनगरस्थ-बोम्मभूपमुखाराधितः, सांसारिकसर्वसाधनसम्पन्नः, श्रौताचारनिरतश्च आसीद् इति जनश्रुतिरास्ते।[1]

श्लोक ४९ की व्याख्या में भी शिवानन्द कुछ और तथ्य उद्घाटित करते हैं—

अयं तु भरद्वाजगोत्रे सद्द्विजकुले अजनि, तत्तत्कालसंस्कार-संस्कृतः, वीरनृसिंहचिन्नबोम्मादि-भूपतिसमर्चित-विग्रहः, सुगुणसुतैः सह यज्ञेश्वरम् आरराध, स्वयम् अमानुषवैभवान् भुवि दर्शयन्, चतुरधिकशतशिवपारम्य-प्रबन्धगङ्गाप्रवाहेन भुवं शुद्धीकुर्वन् आसीदिति प्रसिद्धेः...दाक्षिणात्यानां द्विजानां मध्ये महाविद्वान् यशःस्फीतप्रथित-कीर्तिरेव। किं पुनः सत्त्वगुणानाम् आर्यावर्तदेशवासिनाम्, तस्यास्य प्रसिद्धिः महत्यस्त्येव।

---

१. श्रीमदप्पय्यदीक्षितेन्द्रग्रन्थावलीसीरीज-३, सिकन्दराबाद, १९८०, पृ० २४४-२४७,

शिवाज्ञया प्राग् विरिञ्चिपुरे मातुलगृहे जनित्वा, अडयप्पलाग्रहारे कौमारावस्थां नीत्वा, मध्यार्जुनकार्णेटिचन्द्रगिरिमुखेषु यष्ट्वा, चान्तसमये दैवात् चिदम्बरपुरं मुक्तिस्थलं लब्धम्।......श्रुतिविहितानि द्विसप्ततिवयांसि अतिक्रामन्।'

अप्पयदीक्षित के वंश आदि के विषय में उपरिलिखित उद्धरण से जो तथ्य प्रकट होता है, वही अन्यत्र भी पुष्ट होता है। केवल जन्मकाल के विषय में मतान्तर है। शिवानन्दयति के अनुसार गणना करने पर अप्पय दीक्षित का समय १५५३ ई० से १६३५ ई० तक सिद्ध होता है। किन्तु श्री वाई० महालिङ्ग शास्त्री[1] तथा श्री पी० पी० एस० शास्त्री[2] को यह मान्य नहीं। कालकण्ठेश्वर महादेव के मन्दिर में मिले शिलालेख के आधार पर श्री महालिङ्गशास्त्री की गणना है कि अप्पयदीक्षित का प्रादुर्भाव १५२० से १५५३ ई० तक हो जाना चाहिये।

अप्पयदीक्षित के समयों में अन्तर के अनेक कारण सम्भावित हैं। उनके जीवनीकार समसामयिक न होने के कारण निश्चित तिथियाँ नहीं दे पाये। इसके अतिरिक्त जो शिलालेख मिले उनमें निश्चितरूप से यह उल्लिखित नहीं है कि उनमें दी गयी तिथियाँ किस अवसर या कार्य की ओर सङ्केत करती हैं। चर्चित शिलालेख से यही नहीं स्पष्ट हो पाता है कि उसमें निर्दिष्ट तिथि अप्पयदीक्षित के कनकाभिषेक की है, मन्दिर के निर्माण की है अथवा अन्य किसी भी विषय की। प्रशस्ति लेखकों अथवा पञ्जीकारों ने जो इनका वंशवृक्ष बनाया उन्होंने अपने को इनका निकटवर्ती सिद्ध करने के लिये थोड़ा-बहुत परिवर्तन करने में सङ्कोच नहीं किया होगा। जिन राजाओं के आश्रय में यह रहे वे भी अनेक हैं जो अलग अलग ग्रन्थों में उल्लिखित हैं।[3] उन उल्लिखित राजाओं की भी महत्त्वपूर्ण तिथियों का विवरण विस्तार से प्राप्त नहीं हो रहा है। इन परिस्थितियों में पाँच-दस वर्षों का अन्तर हो जाना तो स्वाभाविक ही है। आचार्य दीक्षित ने भी अपनी कुलपरम्परा और अपने पिता-पितामह का उल्लेख अत्यन्त आदरपूर्वक किया है, किन्तु

---

१. जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास, वाल्यूम ३, पृ० १४८-१४९,
२. शास्त्रसिद्धान्तलेशसंग्रहः श्रीरङ्गम् १९३५ ई०, इण्ट्रोडक्शन पृ० १-१३
३. द्रष्टव्य-कुवलयानन्द-उपसंहार १७१, शिवार्कमणिदीपिका की पुष्पिका।

अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण तिथियों और घटनाओं को दृष्टि से ओझल कर दिया।[१]

पाण्डित्य तथा इष्टदेव--आचार्य का पाण्डित्य अद्भुत था। व्याकरण तथा काव्यशास्त्र के अतिरिक्त वेदान्तदर्शन के विविध सम्प्रदायों अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शैवविशिष्टाद्वैत आदि-के मण्डन एवं खण्डन के लिये अनेक प्रकार के ग्रन्थों की रचना की। शिव, दुर्गा आदि से सम्बद्ध स्तोत्रों तथा उनकी व्याख्याओं में निर्दिष्ट सन्दर्भों में दीप्त पाण्डित्य के अवलोकन से आंखें चकाचौंध खा जाती हैं। शैव, वैष्णव और शाक्त सभी पुराणों से समानरूप से इन्होंने सन्दर्भ ले ले कर अपने कथ्य की पुष्टि की है।

अप्पयदीक्षित मुख्यतः 'अद्वैतस्थापनाचार्य थे,[२] यद्यपि इन्होंने अन्य वेदान्त-सम्प्रदायों के पोषक ग्रन्थों की भी रचना की थी। 'चतुर्मतसारसंग्रह' में इनके द्वारा संक्षेप में प्रतिपादित शांकर, विशिष्टाद्वैत, श्रीकण्ठ और माध्व मत को तत्तदाचार्य पूर्णतः प्रामाणिक मानते हैं। अप्पय स्वयं में शांकर-अद्वैत को ही समस्त शास्त्रों का परमप्रतिपाद्य मानते हैं, किन्तु वहाँ निर्दिष्ट लक्ष्य की सिद्धि के लिए भगवान् शिव की कृपा से चित्त शुद्धि की आवश्यकता की घोषणा करते हैं।

यद्यप्यद्वैत एव श्रुतिशिखरगिरामागमानां च निष्ठा
साकं सर्वैः पुराणस्मृतिनिकरमहाभारतादिप्रबन्धैः।
तत्रैव ब्रह्मसूत्राण्यपि च विमृशतां भान्ति विश्रान्तिमन्ति
प्रत्नैराचार्यरत्नैरपि परिजगृहे शङ्कराद्यैस्तदेव॥

तथाप्यनुग्रहादेव तरुणेन्दुशिखामणेः।
अद्वैतवासना पुंसामाविर्भवति नान्यथा॥
अनुग्रहश्च देवस्य शक्त्या चिद्रूपया सह।
यथावत्तं परिज्ञाय ध्यायद्भिस्समवाप्यते[३]॥

---

१. जन्मकाल आदि के विचार के लिये द्रष्टव्य-डा० एन० रमेशन: श्री अप्पय्यदीक्षित, हैदराबाद, १०-३२

२. आद्रियध्वमिदमध्वदर्शनं व्यध्वनं त्यजत मध्वदर्शनम्।
शांकरं भजत शाश्वतं मतं साधवः स इह साक्ष्युमाधवः॥
मध्वतन्त्रमुखमर्दनम् ६३॥

३. शिवार्कमणिदीपिका बम्बई १९०८ ई०, प्रारम्भ के श्लोक ६-८॥

इसीलिये इन्होने 'श्रीकण्ठभाष्य' पर 'शिवार्कमणिदीपिका' नाम की व्याख्या का प्रणयन किया और 'श्रीकण्ठमतप्रतिष्ठापनाचार्य' की संज्ञा से विभूषित हुये।

यद्यपि अद्वैत-भावना करने वाले के लिये सभी देव समान हैं, उसका किसी के प्रति पक्षपात सिद्ध नहीं होता, किन्तु आचार्य दीक्षित का विशेष आकर्षण भगवान् शिव के प्रति दृष्टिगोचर होता है। इसका कारण-निर्देश रघुनाथवर्मा ने अपने 'लौकिकरत्नाकर' में अप्पयदीक्षित के एक श्लोक के उद्धरण से किया है—

विष्णुर्वा शङ्करो वा श्रुतिशिखरगिरामस्तु तात्पर्यभूमिः
नास्माकं तत्र वादः प्रसरति किमपि स्पष्टमद्वैतभाजाम्।
किं त्वीशद्वेषगाढानलकलितहृदां दुर्मतीनां दुरुक्तीः
भङ्क्तुं यत्नो ममायं न हि भवतु ततो विष्णुविद्वेषशङ्का॥

इसी पद्य की प्रस्तावना करते हुये रघुनाथवर्मा स्पष्ट कहते हैं कि—

"अत एव श्रीमदप्पय्यदीक्षितैः शिवद्वेषिवैष्णवंमन्यमानैः रामानुजाद्यनुयायिभिः प्रतिपादितविष्णूत्कर्षशिवापकर्षविपरीतोत्कर्षापकर्षप्रतिपादनपरैः शिष्टनिन्दावारणाय स्वानुयायिनां शिवविष्णवादिषूत्कर्षापकर्षबुद्ध्यनुवृत्तिवारणाय चोक्तम्।" इति।[1]

शिव को अवैदिक तथा शैवपुराणों को तामसिक कहने की प्रवृत्त परम्परा का भी अप्पय दीक्षित ने सशक्त विरोध किया और अनेक प्रकार से सिद्ध किया कि शिव वैदिक देवता हैं, केवल संहार ही उनका कार्य नहीं है और उनसे सम्बद्ध पुराण आदि शास्त्र तामसिक श्रेणी में नहीं आते। इन विषयों का विशद निरूपण इनकी 'शिवार्कमणिदीपिका' में यत्र-तत्र उपलब्ध होता है। सामान्यतः कहा जा सकता है कि इष्ट होने के कारण भी शिव की श्रेष्ठता का प्रतिपादन इन्होंने किया, किन्तु विष्णु आदि का देवता के रूप मे तिरस्कार कभी नहीं किया। 'रत्नत्रयपरीक्षा' सदृश ग्रन्थों में तो हरि, हर और गौरी तीनो को महारत्न स्वीकार किया गया है। प्रतीत होता है कि अद्वैत के आचार्य होने के कारण अन्यों के साम्प्रदायिक विरोधों का प्रत्याख्यान करने के लिये ही, इन्होने शिव को विशेष महत्व दिया।

दीर्घ जीवन तथा ग्रन्थ—आचार्य अप्पय ने ७२-७३ वर्षो का दीर्घ जीवन अध्ययन, अध्यापन, विद्वानो के साथ शास्त्रचर्चा अथवा शास्त्रार्थ

---

१. श्रीमदप्पय्यदीक्षितेन्द्रग्रन्थावली सीरीज ३, पृ. ४० प्रस्तावना २।

तथा अपने वैदुष्यपूर्ण वंशधरों की परम्परा में व्यतीत किया था। अतः इनकी प्रतिभा निरन्तर निखरती गयी और इन्होंने विभिन्न विषयों के शताधिक ग्रन्थों की रचना की। इनके लम्बे जीवन तथा 'शत' अथवा 'चतुरधिकशत' ग्रन्थों की रचना का उल्लेख प्राप्त होता है।[1]

इनके एक सौ चार ग्रन्थ कौन कौन हैं, यह अभी तक पूर्णतः निश्चित नहीं हो पाया, जिसके अनेक कारण हैं। प्रथमतः अप्पयदीक्षित नाम के अनेक विद्वान् हो गये हैं, जिनमें से कई तो इनकी ही दो-तीन पीढी आगे पीछे के हैं।[2] दूसरे इनके बड़े ग्रन्थों के अंश भी पृथक एवं स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में उल्लिखित हैं। तीसरे एक ही नाम के इनके ही भिन्न-भिन्न विषयों के ग्रन्थ मिलते हैं। एक ही ग्रन्थ में प्रसङ्गतः अनेक विषयों का समानरूप से कथन होने से कभी कभी यह भी कठिन हो जाता है कि ग्रन्थ-विशेष का वर्गीकरण किस विषय में किया जाये। विशेषतः स्तोत्रों और उनकी स्वोपज्ञ व्याख्याओं को सम्मिलित रूप से देखने पर उक्त भ्रम होता है। चौथे इन्होंने अपनी बहुत सी कृतियों की व्याख्यायें भी स्वयं लिखी हैं, ऐसी स्थिति में मूल तथा व्याख्या दोनों को एक अथवा दो ग्रन्थ मानने में भी विवाद हो सकता है। पाँचवें-इनकी अनेक कृतियों के एक से अधिक नाम भी मिलते हैं, अतः जब तक उन उन नामों के ग्रन्थ उपलब्ध न हों और

१–(क) नीलकण्ठदीक्षित-के 'आनन्दसागरस्तव' में–'श्रीमद्भरद्वाजकुलजलधिकौस्तुभश्रीकण्ठमत-प्रतिष्ठापनाचार्य-चतुरधिकशतप्रबन्धनिर्वाहक-श्रीमन्महाव्रतयाजिश्रीमदप्पयदीक्षित·········।

(ख) चिदम्बरमिदं पुरं प्रथितमेव पुण्यस्थलं
सुताश्च विनयोज्ज्वलाः सुकृतयश्च काचित् कृताः।
वयांसि मम सप्ततेरुपरि नैव भोगे स्पृहा।
न किञ्चिदहमर्थये शिवपदं दिदृक्षे परम्॥
आभाति हाटकसभानटपादपद्म ज्योतिर्मयो मनसि मे तरुणारुणोऽयम्।
(नूनं जरामरणयोरपिशाचकीर्णा संसारमोहरजनी विरतिं प्रयाता॥)
डा. एन. रमेशनः श्रीअप्पय्यदीक्षित,–पृ. १३५ पर उद्धृत।

२. मद्रास से प्रकाशित 'न्यू कैटेलागस कैटेलोगोरम्' (पृ. २५८–२६७) में अप्पय, अप्पयदीक्षित, अप्पयमन्त्रिन्, अप्पयाचार्य, अप्पयार्य, आदि लगभग ३४ नाम मिलते हैं। इनमें से एक की कृति का दूसरे के साथ जुड़ जाना असम्भव नहीं है।

उनका परितुलन न कर लिया जाये तब तक निर्भ्रान्त रूप से उनको एक कहना कठिन होगा।

विभिन्न विद्वानो ने इनके ग्रन्थों का नाम तथा संख्या गिनाने का प्रयास किया है, किन्तु उनकी संख्या में ऐक्य नहीं है। श्रीमन्तरगुड्डी राजु शास्त्रीगल ने अपने 'दीक्षितवंशाभरणम्' में केवल ३४ कृतियों का उल्लेख किया है, जब कि श्रीयज्ञनारायण शास्त्रीगल ने 'श्रीत्यागराजविजय' में ७३ का किया है। कुछ जीवनियों में ९६ ग्रन्थों तक का नाम मिलता है। 'न्यू कैटेलागस कैटेलोगोरम' मद्रास, के विद्वान् सम्पादकों ने इनकी ६० कृतियों का उल्लेख किया है, जिनमें अधिकांश का परितुलन भी उन लोगों ने किया था। यहाँ पर प्रथम बार हिन्दी भाषा में इनकी १०४ कृतियों का नामोल्लेख किया जा रहा है।[1]

क-वेदान्तग्रन्थ--

१—सिद्धान्तलेशसंग्रह
२—न्यायरक्षामणि
३—परिमल
४-५-मध्वतन्त्रमुखमर्दन तथा उसकी टीका मध्वमतविध्वंसन
६—नक्षत्रवादावली अथवा पूर्वोत्तरमीमांसावादनक्षत्रमाला।
७, ८, ९, १०-चतुर्मतसारसंग्रह-मध्व, विशिष्टाद्वैत, शिवाद्वैत तथा अद्वैत पर।
११-१२-रामानुजशृङ्गभङ्ग तथा तत्त्वमुद्राविद्रावणम्
१३-१४-रामानुजतात्पर्यसंग्रह तथा व्याख्या
१५--श्रीविद्यातत्त्वविवरणम्
१६—अधिकरणमाला
१७—अधिकरणसारावली
१८--तत्त्वमुक्तावली
१९-२०-न्यायरत्नमाला तथा व्याख्या
२१--मतसारार्थसंग्रह
२२--सिद्धान्तरत्नाकर
२३--मणिमालिका
२४--न्यायमुक्तावलीव्याख्या

---

१. विशेषविवरण के लिये द्रष्टव्य-डा. एन. रमेशन द्वारा लिखित अंग्रेजी ग्रन्थ-श्रीअप्पय्यदीक्षित, हैंदराबाद, १९७२ पृ. ९५ से ११६ तक।

२५--अधिकरणपञ्जिका

ख-शिवाद्वैतग्रन्थ

२६-२७-शिखरिणीमाला तथा टीका शिवतत्त्वविवेक

२८-२९-रामायणतात्पर्यसंग्रह तथा टीका

३०-३१-भारततात्पर्यसंग्रह तथा टीका

३२-३३-ब्रह्मतर्कस्तव तथा टीका

३४-शिवध्यानपद्धति

३५. शिवपूजाविधि

३५. शिवार्चनचन्द्रिका

३७ शिवकर्णामृत

३८. श्रीशिवार्कमणिदीपिका

३९-शिवाद्वैतनिर्णय

४०-४१ आनन्दलहरी तथा टीका चन्द्रिका

४२-भस्मवादावली

४३-४४ रत्नत्रयपरीक्षा तथा टीका

४५-शिवमहिमकलिकास्तुति

४६-४७. पञ्चरत्नस्तुति तथा टीका

४८-वीरशैवम्

४९-शिवध्यानपद्धतिव्याख्या

५०-शिवपुराणतामसत्वखण्डनम्

५१-शैवकल्पद्रुम

ग-मीमांसाग्रन्थ—

५२-५३-विधिरसायन तथा सुखोपयोजिनी टीका

५४-उपक्रमपराक्रम

५५ चित्रपट

५६-मयूखावलि

५७-तान्त्रिकमीमांसा

५८. धर्ममीमांसापरिभाषा

घ-व्याकरणग्रन्थ--

५९-पाणिनीयतन्त्रवादनक्षत्रमाला

ङ-काव्यव्याख्या--

६०-यादवाभ्युदयव्याख्या

च-अलङ्कारग्रन्थ--

६१. कुवलयानन्द
६२-चित्रमीमांसा
६३-वृत्तिवार्तिक

छ-भक्तिपरग्रन्थ--

६४-६५-वरदराजस्तव तथा टीका
६६-आत्मार्पणस्तुति
६७-अपीतकुचाम्बास्तव
६८-मानसोल्लास
६९-निग्रहाष्टक
७०-हरिहरस्तुति
७१-७२-दुर्गाचन्द्रकलास्तुति तथा टीका
७३-७४-आदित्यस्तोत्ररत्न तथा टीका
७५ श्रीमार्गबन्धुपञ्चरत्न
७६-श्रीमार्गसहायलिङ्गस्तुति
७७-गङ्गाधरशतक
७८-७९-कृष्णध्यानपद्धति तथा टीका
८०-पादुकासहस्रव्याख्या
८१-अनुग्रहाष्टक
८२-अरुणाचलेश्वरस्तुति
८३-जयोल्लासनिधि
८४-मार्गसहायस्तोत्र
८५-मार्गबन्धुचम्पू-स्वकुलदैवतस्तुतिरूप
८६-विष्णुतत्त्वरहस्य
८७-शान्तिस्तव
८८-स्तोत्ररत्नाकर
८९-शक्तिशतक

ज-स्फुटग्रन्थ--

९०-९१-बालचन्द्रिका तथा व्याख्या
९२-९३-नामसंग्रहमाला तथा टीका
९४-शब्दप्रकाशकोश
९५-प्राकृतचन्द्रिका

९६-अमरकोशव्याख्या
९७-तिङन्तशेषसंग्रह
९८-पञ्चस्वरवृत्ति
९९-प्रबोधचन्द्रोदयटीका
१००-वसुमतीचित्रसेनविलासनाटकम्
१०१-हंससन्देशटीका
१०२-लक्षणरत्नावलीव्याख्या
१०३-हरिवंशसारचरितव्याख्या
१०४-दशकुमारचरितसंग्रह

आत्मार्पणस्तुति—

यह स्तुति आचार्य अप्पय दीक्षित की सम्भवतः अन्तिम कृति है क्योंकि इसपर इनकी स्वोपज्ञ टीका नहीं है, जब कि अन्य स्तुतियों पर इनकी स्वरचित टीकायें प्रायः मिलती हैं। नवधाभक्ति में आत्मार्पण अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ है, अतः संभव है भक्तराज दीक्षित अनन्यचित्त होकर अन्तिम क्षणों में आत्मार्पण कर बैठे हों। सर्वदा चिन्तनपरायण आचार्यप्रवर के लिये यह असंभव नहीं।

इस ग्रन्थ में मात्र पचास श्लोक हैं जिनमें भावों की उद्दामता और समर्पण की सहजता चरमसीमा पर हैं। जनश्रुति के अनुसार एक बार आचार्य दीक्षित ने आत्मपरीक्षण के लिये कि अवचेतन मानस में भी भगवान् शिव की स्मृति रहती है अथवा नहीं, अपने शिष्यों को सावधान करके धत्तूर का भक्षण कर लिया। उन्माद की दशा में उनके मुख से भगवान् शिव की स्तुति ही निकलती रही जिसको उनके अन्तेवासियों ने लिख डाला। वही स्तुति आज 'आत्मार्पण-स्तुति' के नाम से प्राप्त होती है। उन्मत्तावस्था में लिखित होने के कारण इसका अपर-पर्याय 'उन्मत्तपञ्चाशत्' अथवा उन्मत्तपञ्चाशिका भी है। आफ्रेक्ट तथा अन्य ग्रन्थसूचीकारों ने इसका एक नाम 'शिवपञ्चाशिका' भी बतलाया है।

यह स्तोत्र वाणीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम् से स्तोत्रसंग्रह के रूप में प्रकाशित हुआ था। सन् १९०३ में 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका में (वा० ८ पृ० १५९-३३ तथा २१० से २१४) मद्रास से इसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात् आंशिकरूप से इसका प्रकाशन डा० एन० रमेशन ने सिकन्दराबाद से अपने अंग्रेजी भाषा के

ग्रन्थ 'श्री अप्पय्य दीक्षित' १९७२ ई० में परिशिष्ट के रूप में छपवाया। इसके पश्चात् १९८० में श्रीमदप्पय्यदीक्षितेन्द्रग्रन्थावलीसिरीज-३ में पृ० २२७ से ३५६ तक विविध परिशिष्टों से युक्त दीक्षित के वंशधर श्रीशिवानन्द की व्याख्या 'बालबोधिनी' के साथ सिकन्दराबाद से प्रकाशित हुआ। यद्यपि शिवानन्द की टीका के साथ वाराणसी से भी १८६४ ई० के लगभग इसका प्रकाशन हुआ था, किन्तु पाठ बहुत भ्रष्ट तथा मुद्रण अनियमित था। अतः उसे मात्र प्रकाशन या मुद्रण ही कहा जा सकता है। शिवानन्द की टीका की पाण्डुलिपियाँ भारत में उत्तर से दक्षिण तक प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण हस्तलिपिगृहों में उपलब्ध हैं।[१] वस्तुतः यही एकमात्र टीका है जिसका उल्लेख किसी आज तक प्रकाशित पाण्डुलिपिसूची में मिलता है।

श्रीशङ्करनारायण तथा उनकी 'भावलेशप्रकाश' व्याख्या--विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही 'भावलेशप्रकाश' व्याख्या तथा उसके रचयिता श्रीशङ्करनारायण का उल्लेख किसी भी स्थान पर उपलब्ध नहीं होता, अतः इनका ऐतिहासिक विवरण उपस्थित कर पाना दुष्कर है। टीकाकार ने अपना अत्यन्त सामान्य उल्लेख टीका के प्रारम्भ में श्लोक ४ (पृ० १) तथा टीका के अन्त में दो श्लोको में (पृ० ८८) किया है। वहीं पर इनके गुरु स्वयंप्रकाशेन्द्रसरस्वती का भी उल्लेख है। इसके अतिरिक्त इनका कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता। हाँ, पुष्पिका में श्रीशैवशङ्करनारायणभट्ट पूर्ण नाम अवश्य मिलता है, किन्तु इससे भी किसी समस्या का समाधान नहीं होता और उनका ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक पक्ष प्रकाश में नहीं आता।

अद्वैतवेदान्त के इतिहास में स्वयंप्रकाशमुनि तथा स्वयंप्रकाशयति नामके दो विद्वान् परिव्राजकों का उल्लेख मिलता है। इनमें प्रथम थे १६ वीं शती के जिनके गुरु थे श्रीगोपालयोगीन्द्र तथा दूसरे थे १७ वीं शती के जिनके गुरु थे श्रीकैवल्यानन्दयोगी। प्रथम ने शङ्करकृत एकश्लोक की व्याख्या तथा 'गुणत्रयविवेक' लिखा था। द्वितीय ने दक्षिणामूर्तिस्तोत्र की व्याख्या 'तत्त्वसुधा' तथा 'अद्वैतमकरन्द' की टीका 'रसव्यञ्जिका' की रचना की। अप्पय के परवर्ती होने से १७ वीं शती के स्वयंप्रकाशयति से यदि स्वयंप्रकाशेन्द्रसरस्वती को अभिन्न माना

१. द्रष्टव्य न्यू कैटे० कैटेलोगोरम, मद्रास वा० १ में 'आत्मार्पणस्तुति'

जाये तो १७ वीं शती में शङ्करनारायण का आविर्भाव संभव होगा। श्रेष्ठताबोधक 'इन्द्र' पद नाम के आगे लगाने की परम्परा दक्षिण में रही है, और यतिपद सरस्वती आदि उपाधिवाले दशनामी संन्यासियों में से किसी के लिये प्रयुक्त हो सकता है, अतः स्वयं-प्रकाशयति को स्वयंप्रकाशेन्द्रसरस्वती से अभिन्न मानने में कठिनाई नहीं होगी। समर्थन में दूसरी युक्ति यह भी है कि शङ्करनारायण शैव थे और उनके गुरु ने वेदान्त के साथ दक्षिणामूर्तिस्तोत्र की व्याख्या की भी रचना की थी, अतः उनकी भी शिव की ओर सहज रुचि व्यक्त होती है। इस आधार पर शङ्करनारायण का समय १७ वीं -१८ वीं शती माना जा सकता है। प्रथम स्वयंप्रकाशमुनि १६ वीं शती के होने से अप्पय के समकालीन ही सिद्ध होते हैं। उनके ग्रन्थ भी शिवपरक नहीं हैं। अतः शङ्करनारायण का सम्बन्ध १७ वीं शती के स्वयंप्रकाशयति से ही सिद्ध होता है।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

आत्मार्पणस्तुतिः

श्रीशङ्करनारायणकृत 'भावलेशप्रकाश' टीका-सहित-
'चन्द्रिका' हिन्दीभाषान्तरोपेता

'भावलेशप्रकाश' टीकाकर्तृमङ्गलाचरणम्—

सर्गादौ सरसिजसंभवादिदेवाः
संभूता यत इह पञ्चकृत्यभाजः ।
ईशानं परवियति प्रकाशमानं
तं वन्दे परमशिवं शिवासमेतम् ॥ १ ॥

प्रत्यूहरात्रिपरिमुद्रितसर्वलोक-
प्रज्ञासरोरुहविकासनसप्तसप्तिः ।
श्रीमान् ममाखिलपदार्थयथार्थबोध-
दाताऽस्तु संततमुमातनुजो गजास्यः ॥ २ ॥

भारद्वाजकुलाम्बुधौ समुदितः पूर्णः कलाभिः सदा
सेव्योऽनेककवीश्वरैर्बुधवरैस्तत्त्वार्थबोधश्रुतिः ।
श्रीशम्भोरमृतांशुमूर्तिरपरो यः शाम्भवानन्ददः
[1]श्रीमानप्पयदीक्षितो विजयते तीर्णाब्धिचूडामणिः ॥ ३ ॥

श्रीशङ्करपदोपेत-नारायण-पदाभिधः ।
आत्मार्पणस्तुतिव्याख्यां कुर्वे श्रीशिवनोदितः ॥ ४ ॥

इह खल्वनेकशतसहस्रजन्म-सुविहित-सुकृतनिकुरम्ब-विजृम्भितान्तरङ्ग - वैमल्यविमृष्ट - विषयदोष - समुदितवैराग्यसम्पादितानादिसंसारनिदान-मायादिपाशनिवृत्युपायविचारे पुरुषे परमेश्वरप्रसादो भवति। तथोक्तम्—'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'। (कठ. १।२।२३।)

शिवेनानुगृहीता ये सच्चिदानन्दमूर्त्तिना ।
तैः शिवो ज्ञायते सम्यगन्यैर्न ज्ञायते ध्रुवम् ॥

---

१. "श्री···प्पयदीक्षितो विजयते तणाभुचूगमणि" इति भ्रष्टः पाठः मूले ।

इति श्रुतिस्मृतिभ्याम् । तेन शिवप्रसादेन 'स्वामी शिवोऽस्तीति' शिवे बुद्धिपूर्विकाऽल्पा भक्तिरुदेति ।

धर्मास्तपांसि दानानि यागाश्च विविधाः सुराः ।
शिवोऽस्तीत्यस्ति या बुद्धिस्तदर्थमिति मन्यताम् ॥

इति 'शिवरहस्य' वचनात् ।

शिवोद्देशेन कृतमेतेषां शिवप्रसादद्वारा भक्तिसम्पादकत्वम्, ततस्तया भक्त्या शिवपूजादिशैवधर्मे दृढा प्रवृत्तिर्भवति ।

त्वमेकः सर्वजगतामीश्वरो बन्धमोक्षयोः ।
तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं हरम् ॥

(भाग. ८।७।२२)

इति भागवतवचनात् ।

तस्मान्मुमुक्षुर्मां विष्णुमपि त्यक्त्वा महेश्वरम् ।
आश्रयेत् सर्वभावेन प्रसादं कुरुते हि सः ॥

इति सूतसंहितायां (?) ब्रह्मवचनात् त्रिकरणपूर्वा भक्तिः । शिवधर्माचरणात् ततस्तस्मिन् परमेश्वरपरमप्रसादो भवति ।

प्रसादे तत्क्षणादेव मुच्यते नात्रसंशयः ।

इति वायवीयवचनात् तादृशशिवप्रसादात् पुंसो निखिलपाशनिवृत्तिस्ततो ब्रह्मानन्दावाप्तिरिति । तथोक्तं शैवे—

अनेकजन्मसिद्धानां श्रौतस्मार्तानुवर्त्तिनाम् ।
विरक्तानां प्रबुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः ॥
प्रसन्ने सति देवेशे पशोस्तस्मिन् प्रवर्तते ।
अस्ति नाथो ममेत्यल्पा भक्तिर्बुद्धिपुरःसरा ॥
तपसा विविधैः शैवैर्धर्मैः संयुज्यते नरः ।
तत्संयोगे तदभ्यासस्ततो भक्तिः परा भवेत् ॥
परया च तया भक्त्या प्रसादो जायते परः ।
प्रसादात्सर्वपाशेभ्यो मुक्तिमुक्तस्य निर्वृतिः ॥

(इति वायवीय ८।२९-३२)

प्राक्संस्कारवशादेव ये विचिन्त्य बलाबले ।
विवशा मां प्रपद्यन्ते मम प्रियतमा मताः ॥

(वाय० १०।६४)

(विवशा वेदमापन्नास्तेऽपि कैवल्यभागिनः)

इति वायवीयवचनात् ईश्वरशरणं गताः परमेश्वरस्यात्यन्तं प्रियास्तान्—

"प्रपन्नवत्सलः शम्भुः संसारार्त्तान् समुद्धरेत्"

(अनुशा० प० १७।१६८।)

इति भारतवचनात् परममोक्षसाधनं शिवं शरणं यान्ति। तथोक्तम् "मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये। सद्योजातं प्रपद्यामि।' (श्वेता. ६।१८।)

येषां संसारविच्छित्तिर्यद्देहापगमे सति।
त एव सर्वभावेन शरणं यान्ति शङ्करम्॥

इत्यादि श्रुतिस्मृतिनिकरैः। इदमेवेश्वरशरणं परमपुरुषार्थसाधनमिति भगवता श्रीकृष्णेन—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८।६१-६२)

इत्यर्जुनायोपदिष्टम्। तदिहेश्वरपराणामुपकाराय आत्मार्पणस्तुतिः अप्पयदीक्षितैर्विरचिता। तत्र स्तुतिर्नाम गुणिनिष्ठगुणाभिधानरूपा।

अस्ति कश्चिदपर्यन्त-रमणीयगुणाश्रयः।
सर्वलोकस्य निर्माता पशुपाशविलक्षणः॥

(सू. सं. सूतगीता २।२।)

इति शैववचनात्। अनन्तकल्याणगुणार्णवस्य जगद्विलक्षणस्य शिवस्य स्वरूपावगतौ कः शक्त इत्यसामर्थ्यम् उक्त्वा परिहारपूर्वकं स्तोत्रप्रवृत्तिमभिधाय पुनरप्येतादृशं मम साहसं क्षमस्वेति परमेश्वरं प्रार्थयन् स्तोत्रनिरूपणीयसकलार्थं सूचयति प्रथमश्लोकेन—

कस्ते बोद्धुं प्रभवति परं देवदेव प्रभावं
यस्मादित्थं विविधरचनासृष्टिरेषा बभूव।
भक्तिग्राह्यस्त्वमिति भगवन् त्वामहं भक्तिमात्रात्
स्तोतुं वाञ्छाम्यतिमहदिदं साहसं मे सहस्व॥१॥

हे देवाधिदेव! तुम्हारे उत्कृष्ट सामर्थ्य को जानने में कौन समर्थ है, जिस (तुम) से इस प्रकार की अनेक रूपों वाली यह सृष्टि उत्पन्न हुई। 'तुम भक्ति से प्राप्य हो' यह (समझ कर) हे भगवन्! मैं स्वल्प ही भक्ति से तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ। तुम मेरे इस दुष्प्रयास को क्षमा करो॥ १॥

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं, तं देवतानां परमं च दैवतम्।
यस्मादीशो महतामीश्वराणां, भवानाद्यः प्रीतिदः प्राणदश्च ॥
(श्वेता. ६।७)

'तस्माद्धि त्वामीश्वरं प्राहुरीशं, सन्तो विद्वान्सः सर्वशास्त्रार्थविज्ञाः' ॥

इति श्रुतिस्मृतिभ्यां जगदाराध्यानां ब्रह्मादिदेवानामाराध्य इत्याह— 'देवदेवेति ।' अनेन निखिलजगदाराध्यत्वमुक्तम्। हे परमेश्वर, ते प्रभावं सामर्थ्यं विभूतिम्—

य: परामपरां चैव विभूतिं वेत्ति तत्त्वतः।

इति प्राकृताप्राकृतरूपेण परमेश्वरविभूतिद्वैविध्यमभिधाय—

'अप्राकृती परा चैषा विभूतिः पारमेश्वरी ।' (वायवीय ४।७६)

इति वायुवचनादाह—'परमिति'। परत्र ह्यधर्मरूपपरमानन्दमयचिदम्बरशक्तिरेव परो महिमा विभूतिरैश्वर्यं प्रभाव आज्ञेत्यादयः परब्रह्मपरशक्तिवाचकाः श्रुतिस्मृतिपुराणागमसिद्धाः।

'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'।
(श्वेता ६।८)

शक्तिः स्वाभाविकी तस्य वेद्या विश्वविलक्षणा।
एकानेकस्वरूपेण भाति भानोरिव प्रभा ॥[1] इति।

एकस्यानेकरूपत्वमुक्त्वा समानधर्मिणीमेव—

आद्या सैका पराशक्तिश्चिन्मयी शिवसंश्रया।
यामाहुरखिलेशस्य तैस्तैरनुगुणैर्गुणैः ॥

इति श्रुतिस्मृतिभिः सा परमेश्वरस्य ज्ञानेच्छादिकल्याणगुणरूपाऽपि स्वयं ज्ञानेच्छाद्यखिलरमणीयगुणा शिवसमानधर्मिणी। तथोक्तमभियुक्तैः-

शक्तिः शरीरमधिदैवतमन्तरात्मा
ज्ञानं क्रियाकरणमासनजालमिच्छा।
ऐश्वर्यमायतनमावरणानि च त्वं
किं तन्न यद्भवसि देवि शशाङ्कमौलेः ॥

इति कालिदासः (?)।

शक्तिः प्रज्ञा सुखमिति सदा धर्मभूताऽपि शम्भोः
शक्ता प्राज्ञी नियतसुखिनी नित्यमप्यस्य पत्नी।
स्त्रीसत्येषा भवति पुरुषः स्त्रीषु रक्तः स च स्त्री-
त्याश्चर्याणां निधिरनवधिः कापि दिव्या शिवाज्ञा ॥

---

१. 'प्रभोः' इति पाठान्तरम्।

इति शिवानन्दलहर्याम् अप्पयदीक्षितैः। अत एव 'विश्वविलक्षणे' त्युक्तम्।
'अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयोः'। (शिवम० २)

इति पुष्पदन्तवाक्यान्मनोवागगोचरं प्रभावं को वा ज्ञातुं शक्नुयात्।
'रहस्यैरपि दुर्ज्ञेयां तां त्रयीं प्रणमाम्युमाम्।'

इति शिवरहस्यवचनाद् दुर्विभावः। कथमित्यत आह–'यस्मादिति'।
'सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशं प्रत्यस्तं यान्ति। (छां० उ० १।९।१)

'नमः शिवायै विश्वस्मात् परस्यै शिवशक्तये।
त्वत्तः खलु समुत्पन्नं जगत्त्वय्येव लीयते'॥

इति श्रुतिस्मृतिभ्यां ब्रह्मधर्मभूतायाश्चिदम्बरशक्तेः शक्त्यादिपृथिव्यन्त-षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकविचित्ररचनाविशेष-विलसत्प्रपञ्चसृष्टिर्बभूव।

सा मूलप्रकृतिर्माया त्रिगुणा त्रिविधा भवेत्।
वाय्वाद्यवनिपर्यन्तं यया ततमिदं जगत्॥

इति वायवीयवचनाच्च। न चैवं शक्तिरेव कारणं न शिव इति वाच्यम्। 'तस्माद्वारा तस्मादात्मन आकाशः संभूतः।' (तै. उ. २।१।१)
'मायिनं तु महेश्वरम्।' (श्वेता० ४।१०)

'सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व भेषजम्'।
न शिवेन विना शक्तिर्न शक्त्या च विना शिवः।
शक्तिः शिवश्च सच्छब्दप्रकृतिप्रत्ययोदितौ॥
तौ ब्रह्मसामरस्येन समस्तजगदात्मकौ।
यथा न जायते पुत्रः पितरं मातरं विना।
तथा भवं भवानीं च विना नैतच्चराचरम्॥
(सूतसं० यज्ञवै० १३।३०, ३२)

इति श्रुतिपुराणेभ्यः शक्तिविशिष्ट एव शिवः कारणं सकलप्रपञ्चस्य, अतः—

विचित्रं शिवनिर्माणं विचित्रं शिवचेष्टितम्।
विचित्रं शिवमाहात्म्यं विचित्रं शिवभाषितम्॥
(स्कन्दब्रह्म० १०।१।)

इति ब्रह्मोत्तरखण्डवचनाच्छक्तिविशिष्टशिवस्य जगदादिषु—

'शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्याः ज्ञानगोचराः।

इत्यनिर्धारितशक्तिमत्सु तत्कर्तुः शिवस्य प्रभावं सम्यक् कोऽपि न जानात्येव। 'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद। (ऋ० १०।१२९।७)

देवदेवस्य रुद्रस्य स्वरूपं तस्य वैभवम् ।
को वा जानाति नास्त्येव स्वयं जानाति वा न वा ॥
(ब्र० गीता० ४।८४)

इति श्रुतिस्मृतिभ्यां परमेश्वरोऽपि स्वप्रभावं जानाति न वा इति संशय उक्तः । असंशये संशयवदभिधानमन्येषां दुर्ज्ञेयत्वोपपादनार्थम्, तर्हि—"ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।" (श्वेता० १।८, ६।१३) 'ईशं तं ज्ञात्वा अमृता भवन्ति' (तदेव ३।७) इत्यादिश्रुतिषु परमेश्वरपरिज्ञानात्सकलसंसारपाशनिवृत्तिरमृतत्वप्राप्तिप्रतिपादनं कथमुपपद्यत इति चेदत आह । 'भक्त्येति ।'

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम् ।
(श्वेता० ५।१४॥)

श्रद्धामप्यस्ति चेत्पुंसां येन केनापि हेतुना ।
वश्यः स्पृश्यश्च दृश्यश्च पूज्यः संभाष्य एव च ॥

इति श्रुतिस्मृतिभ्यां भक्त्यैकवेद्यः शिवः । भक्तिर्नाम् ।

निरस्तसाम्यातिशयत्वबुद्ध्या श्रीसाम्बशम्भावनुरागपूर्वा ।
चित्तानुषक्तिः शिवभक्तिरुक्ता सा मन्दमध्योत्तमभेदभिन्ना ॥
विश्वास-सेवा-रतिभाव-लोभप्रीत्यादिशब्दैरभिधीयते सा ॥

पुत्रमित्रादिषु यथा सक्तं चित्तं सदा नृणाम् ।
तथा सक्तद्भिरुपाक्षे दूरं किं शाङ्करं पदम् ॥
इत्यादित्यपुराणे ।

या प्रीतिरात्मनः पुत्रे या कलत्रे धनेऽपि च ।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्माऽपसर्पतु ॥
इति ब्रह्मोत्तरखंडे । ५।५॥

बीभत्सिते दुर्विषये कदाचिद् यो वाऽनुरागो भविता नरस्य ।
स चेद् भविष्यत्यपि नाम रुद्रे को नाम मुक्तो न भवेद् भवाब्धेः ॥

इति सनत्कुमारसंहितायम् । शैवे—

मदनुग्रहतस्तेषां भावो मयि त्रिधा विदुः ।
तस्यैव भवति श्रद्धा मयि नान्यस्य कस्यचित् ॥

इत्येवं रतिस्नेहादिपदप्रयोगोऽपि पुराणेषु द्रष्टव्यः ।

भक्त्या परमेश्वरं बुद्ध्वा स्तोत्रं कर्त्तुं शक्यते चेत् साहसोक्तिः किमर्थेत्याह—'मात्रादिति' । अल्पार्थको मात्रशब्दः, तथा चाल्पस्तुतिरयुक्ता—

तत्तस्य ते सदसतोः परतः परस्य
नाञ्जः स्वरूपगमने प्रभवन्ति भूम्नः।
ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु
तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥

(भाग० ८।७।३४)

इति भागवतवचनादीषत्सामर्थ्येन महत्कार्यारम्भप्रवृत्तिः साहसमित्यतस्त्वयमिहेश्वरः प्रार्थ्यते—'सहस्वेति।'

कृतकृत्यस्य तृप्तस्य मम किं क्रियते नरैः।
बहिर्वाऽभ्यन्तरे वापि मया भावो हि गृह्यते ॥

इति शिववचनात् भक्त्या कायवाङ्मनोभिः क्रियमाणपूजास्तुतिध्यानादौ शिवो न वैकल्यं गणयति इत्यभिप्रायः।

'भक्त्या दत्तेन गौरीशः पुष्पमात्रेण तुष्यति।' इत्येतावताऽपि तुष्टः शिवः स्वेष्टार्थान् प्रयच्छतीत्यर्थः।

अत्र 'देवदेव' इति विश्वाधिको विषय उक्तः। 'प्रभाव'मिति परब्रह्मधर्मरूपचिदानन्दो मुमुक्षुजनध्येयः प्राप्यश्चोक्तः। शिवभक्तोऽधिकारी। प्रपत्तिमुख्यसाधनम्। तथोक्तम्—

'मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।' 'सद्योजातं प्रपद्यामि।' (श्वेता० ६।१८) 'दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्य' इत्यादिश्रुतिभिः। प्रपत्तिः शरणागतिः। अथ केयं शरणागतिः? उच्यते—

आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यविवर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा ॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्यं षड्विधा शरणागतिः ॥

अहि० बु० सं० ३७।२८-२९ ॥

निक्षेपोऽङ्गीति विज्ञेयः शेषाण्यङ्गानि तस्य हि ॥

इति आनुकूल्यसङ्कल्पो नाम पाशुपतव्रतानुष्ठानपूर्वकं शैवधर्माचरणसङ्कल्पः। शैवधर्मा जाबालश्रुतिसिद्धाः। शिवरहस्येऽपि परिगणिताः।

शैवधर्माः श्रुतिप्रोक्ताः श्रुतयश्च शिवोदिताः।
शिवोक्तधर्मत्यागेन यातना भवति ध्रुवम् ॥
शिवाज्ञावाक्यमुल्लङ्घ्य यः प्रवर्तितुमिच्छति।
स याति नरकं घोरं सर्वशो नात्रसंशयः ॥ इति ॥

शिवधर्मत्यागे प्रत्यवायश्रवणान्मुमुक्षूणां ते धर्मा नित्या मुक्तिहेतवश्च ते च—

शिव एव सदा पूज्यो ब्राह्मणानां विशेषतः।
विभूतिधारणं नित्यं ब्राह्मणानां यथा तथा ॥
विभूत्युद्धूलनं नित्यं नित्यं रुद्राक्षधारणम् ।
शिवलिङ्गस्यार्चनं नित्यं रुद्राध्यायजपस्तथा ॥
पञ्चाक्षरजपो नित्यं नित्यं शैवाभिवन्दनम् ।
सोमवारव्रतं नित्यं शिवरात्रिव्रतं तथा ॥
इमानि नित्यकर्माणि कुर्वन्नित्यमतन्द्रितः ।
यस्तिष्ठति सदा विप्रो स मुक्तो भवति ध्रुवम् ॥ इति ।

तत्रैव प्रातिकूल्यविवर्जनम् । परमेश्वरप्रसादविघातकानाम् अनाचरणम्—

सर्वोत्तमं शिवं मत्वा मामर्चयति यो नरः ।
तस्मै दास्यामि कैवल्यं नान्यस्मै सत्यमुच्यते ॥ इति ।
सर्वोत्तमत्वेनेच्छेत् तथैव ज्ञातव्ये शिवे ।
विष्णवादिदेवतासाम्यं यो वदेदीश्वरे शिवे ॥
स दुर्भगः शिवद्वेष्टा द्वेषस्तत्साम्यधीः शिवे ।
यस्माद्विश्वाधिकत्वेन शिवः सर्वश्रुतः सदा ॥
चक्राङ्कग्रावसाम्येन शिवलिङ्गस्य पूजनम् ।
शिवद्वेषः स तु द्वेषः सर्वंशनिरयप्रदः ॥
महेश्वरातिरिक्तं यो भ्रमेणाप्युपधावति ।
स चाण्डाल इति ज्ञेयः सत्यं सत्यं न संशयः ॥
विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः शिवं पूजयिष्यति ।
स दुर्भगः शिवद्वेष्टा स द्वेषो नरकप्रदः ॥
शिवस्यार्धनमस्कारः शिवद्वेष इति श्रुतः ।
स द्वेषः पापजनितो महापापफलप्रदः ॥
सदा शिवकथाभिन्न-कथाश्रवणवाचने ।
शिवद्वेषोऽयमाकल्पमघोरनरकप्रदः ॥
एतत्प्रभृतयो द्वेषा बहवः पापहेतवः ।
तस्मादेतादृशैर्दोषैर्विमुक्ताः शिव-संमताः ॥ इति ।
शिव एव हि जन्तूनां महासंसारवर्तिनाम् ।
संसारमोचकः साक्षात् सर्वज्ञः साम्ब ईश्वरः ॥
(यज्ञवै० २५।४०)

इति सूतसंहितायाः वचनादीश्वरो मामवश्यं रक्षिष्यतीति निश्चयो विश्वासः।

कीदृशं विदधामि किं करोम्यथ तिष्ठामि कथं भयाकुलः।
क्व नु तिष्ठसि रक्ष मामयि शम्भो शरणागतोऽस्मि ते॥

इत्युपमन्युवचनादीश्वरशरणवरणं गोप्तृत्ववरणम्।

प्रणमाम्यथ यामि चापरं शरणं कं कृपणाऽभयप्रदम्।
विरहीव विभो प्रियामयं परिपश्यामि भवन्मयं जगत्॥

इति वचनेनं त्वमेव मम रक्षको नाऽन्य इति कार्पण्यम्।

सदुपायकथास्वपण्डितो हृदये दुःखशरेण खण्डितः।
शशिखण्डशिखण्डमण्डनं शरणं यामि शरण्यमीश्वरम्॥

इत्यात्मनिक्षेपः।

एवमेवास्मिन्नात्मार्पणस्तोत्रे सपरिकरमात्मार्पणमप्पयदीक्षितैर्निरूपितम्। तथाहि-प्रपदनप्रयोजकविषयोत्कर्षं निरूप्य आद्यश्लोकेन स च विश्वाधिकत्वरूपः। तस्माद्देवराजः शिवो जगत्कर्त्तेति द्वितीयश्लोकः। तद्धि क्षणं नातिव्याप्तमिति प्रदर्शयन् प्रमाणप्रदर्शनार्थस्तृतीयः। आनन्दाश्चेति शिवरूपप्रदर्शनम्। त्वं दान्तैरिति प्रातिकूल्यवर्जनम्। ध्यायन्त इत्यानुकूल्यम्। दासोऽस्मीति शरणवरणम्। ब्रह्मोपेन्द्रेति रक्षिष्यतीति विश्वासः। नाहं रोद्धुमिति कार्पण्यम्। अद्यैवेत्यादिश्लोकपञ्चकेन आत्मार्पणम्। षण्णामेतेषां उपपत्तिभिरुपपादनार्था अन्ये श्लोकाः। तस्मादात्मार्पणस्तुतिरिति यथार्थसंज्ञा॥ १॥

अथ शरण्यं सर्वज्ञत्व-सर्वशक्तित्व-दीनरक्षकत्वादि-कल्याणगुणनिधित्वेन विज्ञाय विश्वाधिकं शरणं याति। स विश्वाधिकः सर्वोत्कृष्टः सर्वसेव्य इति प्रथमश्लोकेनोक्तः। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' (तैत्तिरीय ३।१) 'जन्माद्यस्य यत (ब्र० सू० १।१।२) इति श्रुतिसूत्राभ्यामुक्तं यज्जगज्जन्मादिकारणं सर्वकर्तृरूपं तस्य लक्षणं तन्नातिव्याप्तमित्युपपाद्य परमेश्वरे जगत्कर्तृत्वं निगमयति—

क्षित्यादीनामवयववतां निश्चितं जन्म तावत्
तन्नास्त्येव क्वचन कलितं कर्त्रधिष्ठानहीनम्।
नाधिष्ठातुं प्रभवति जडो नाप्यनीशश्च भावम्
तस्मादाद्यस्त्वमसि जगतां नाथ! जाने विधाता॥२॥

पृथ्वी आदि अवयवियों की उत्पत्ति निश्चित ही हैं, किन्तु कर्त्ता एवं आश्रय

के अभाव में उसकी कहीं कल्पना तक नहीं हो सकती। (उस जगत् के) नियन्त्रण में न तो (कोई) जड पदार्थ समर्थ है और न (कोई) पराधीन ही। अतः हे स्वामिन् ! मैं समझता हूँ कि संसार के आद्यस्रष्टा तुम्हीं हो ॥ २ ॥

क्षित्यादीनां सावयवत्वेन कार्यत्वं सर्वप्रतिपन्नम्। 'कार्यं सावयवं यत' इति वायुवचनात् च। क्षित्यादि जगत्सकर्तृकं, कार्यत्वात्, इत्यनुमाने तत्कर्त्ता सिद्धः। स च शिव एव।

न तत्कर्त्रन्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना' (वायवीय ९।१०)

इति वायुवचनात्। तज्जन्म बुद्धिमत्प्रेरणामन्तरेण क्वापि न दृष्टम्।

शिवः क्षित्याद्युपादानज्ञानवानत एव सः।
जगदीश्वर इति ख्यातः............... ॥

इति विशेषान्तं सृजतीत्यपि सम्मतम्।

किन्तु तत्रापि कर्तृत्वं नाव्यक्तस्य न चात्मनः।
अचेतनत्वात् प्रकृतेरज्ञत्वात् पुरुषस्य च ॥
(वायवीय ९।८-९)

इत्याह—'नाधिष्ठातुमित्यादि'।

तस्माच्छक्तः स्वतन्त्रो यः सर्वशक्तिश्च सर्ववित्।
अनादिनिधनश्चायं महदैश्वर्यसंयुतः ॥
स एव जगतः कर्त्ता महादेवो महेश्वरः।

इति वायुवचनादाह—'तस्मादिति'।

स्वतन्त्रस्य तथेशस्य सर्वज्ञस्यामितात्मनः।
सृष्ट्यादावितरापेक्षा नास्ति सर्वात्मना सुराः ॥
प्रकृत्यवस्थापितकारणानां यावत् स्थितिर्या च पुनः प्रवृत्तिः।
तत्सर्वमप्राकृतवैभवस्य सङ्कल्पमात्रेण महेश्वरस्य ॥
(वायवीय १०।४८)

इति वायवीयवचनात् परमेश्वरस्य जगत्सृष्ट्यादिमहाकार्येषु सङ्कल्पमन्तरेण नान्यदपेक्षितमस्तीत्यर्थः। अनेन श्लोकेन श्वेताश्वतरोपनिषदर्थ उक्तः ॥ २ ॥

ननु पूर्वग्रन्थेन साधितो यो जगत्कर्त्ता सोऽसौ शिव एव इति कथं निर्णयः ? शिवं जगत्कारणं प्रस्तुत्य—

तमेव बहुधा देवं वदन्ति यदुनन्दन।
अजानन्तः परं भावमविकल्पं महर्षयः ॥
नाध्यवस्यन्ति मुनयो नानाप्रत्ययकारणात्।
(वायवीय ५।२, ३४ ॥)

इत्यन्तेन वायवीयोत्तरार्द्धषष्ठाध्यायेन ऋषीणां तत्प्रभावपरिज्ञानादन्यथाप्रतिपन्नानामन्यथाव्यवहारस्य। *ब्रह्मगीतायां*—

तं हरं केचिदिच्छन्ति केचिद् विष्णुं सुरोत्तमाः।
केचिन्मामेव चेच्छन्ति केचिदिन्द्रादिदेवताः॥
केचित्प्रधानं त्रिगुणं स्वतन्त्रं केवलं जडम्।

(ब्र० गी० २।५।६)

इत्यादितो व्यवहारस्य। कौर्मे—(२।४४।३६)

एनमेके वदन्त्यग्निं नारायणमथापरे।
इन्द्रमेके परं प्राणं ब्रह्माणमपरे जगुः॥

इति व्यवहारस्य चानुवाहकः—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

ऋ० ।१।१६४।४६॥

इति वेदवाक्यसिद्धपक्षाननूद्य तन्निरासपूर्वकं सकलश्रुतिसिद्धसाम्बशिव एव जगत्कर्त्तेति सिद्धान्तयति—

इन्द्रं मित्रं वरुणमनिलं पुनरजं विष्णुमीशं
प्राहुस्ते ते परमशिव ते मायया मोहितास्त्वाम्।
एतैः साकं सकलमपि च यच्छक्तिलेशे समाप्तं
स त्वं देवः श्रुतिषु विदितः शम्भुरित्यादिदेवः॥३॥

तुम्हारी माया से मोहित भिन्न भिन्न लोगो ने हे परमशिव! तुमको इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु और ईश्वर कहा है। इनके सहित (शेष) सब कुछ भी जिसकी शक्ति के कण मात्र में समाहित है, वह देव तुम्हीं हो, श्रुतियों में 'शम्भु' इस नाम से विख्यात हो और सभी देवताओं में प्रथम हो॥३॥

ये शप्ता मुनिभिः षड्भिः शिवनिन्दापराः पुरा।
कापिलादिषु शास्त्रेषु भ्रमन्त्यद्यापि तेऽधमाः॥
न श्रोतव्या हि तद्वार्ता तेऽन्यथावादिनो यतः।
महापापवतां नृणां शिवः सत्यादिलक्षणः॥
परत्वेन च यः साम्बः सर्वथा न विभासते।

इति स्कान्द-पराशरादिश्रुतपरमुनिशापपापाभ्याम् उन्मूलितमतयस्त एव। तेऽन्यथा व्यवहरन्ति।

विहाय तं महाम्नाया ब्रह्मविष्ण्वादिदेवताः।
परतत्त्वतया वेदा वदन्तीति ब्रुवन्ति च॥

तथा स्मृतिपुराणानि भारतप्रमुखानि च ।
वदन्ति मायामत्यर्थं सा मायादुस्तरा खलु ॥

इति पराशरोक्त्या शिवमायाभ्रान्तानां व्यवहृतमसाधकमित्याह 'माययेति' ।

सर्वे वादाः श्रुतिस्मृत्योर्विरुद्धा इति मे मतिः ।
पापिष्ठानां तु जन्तूनां तत्र तत्र सुरर्षभाः ॥
प्राक्संस्कारवशादेव जायते रुचिरास्तिका ।

इति ब्रह्मणा 'इन्द्रं मित्रमि'त्यादिपक्षाः श्रुतिस्मृतिविरुद्धाः पापिष्ठानामेव प्रिया न वैदिकानां शुद्धानामिति ते निरस्ताः ।

सर्वदेवोत्तमे नित्ये भगवत्यम्बिकापतौ ।
शिवमायामोहितानामन्यथा जायते मतिः ॥
सोमः पवत इत्यादि ऋङ्मन्त्रैरम्बिकापतिः ।
मर्त्यादीनां च सर्वेषां जनितेत्युच्यते द्विजाः ॥
मध्ये मध्येऽपि तद्वाक्ये जनितेत्यनुवर्तनम् ।
लोकभ्रान्तिनिवृत्यर्थमिति विज्ञायते मया ॥
अतो मतिप्रभृतयो मदन्ताः सोमसंभवाः ।
अयमर्थस्तु निर्णीतो देवेनैव यथार्थतः ॥
ईशो नित्यो विभुः कर्त्ता शिव एव न चापरः ।
ईशभिन्नस्य जन्यस्य विनाशप्रतियोगिनः ॥
कथं वा स्यान्महेशत्वं घोरसंसारवर्तिनः ।
अहं यथा सोमजन्यस्तथा ब्रह्मापि सोमजः ॥
एवमिन्द्रस्तदन्येऽपि सोमजन्या न संशयः ।
उमया सहितः सोमः स तु साम्बः सदाशिवः ॥
स एव भगवान नान्यः स एवेश्वर उच्यते ।
ईशानः सर्वविद्यानामित्यारभ्य सदाशिवो ॥
इतिवाक्यं न यैर्दृष्टं नमामीशं विदुर्जडाः ।
तानि वाक्यानि दृष्ट्वाऽपि शिवमायाविमोहिताः ॥
मामीशमाहुर्दुर्वृत्ता वेदबाह्यं कुमार्गगाः ।
एवं शिवान्यदेवेषु ब्रह्मादिष्वपि मोहतः ।
ईशत्वं यो विजानाति स संसारी भविष्यति ॥
शिव एवेश्वरस्तस्माच्छिवान्यो नेश्वरो ध्रुवम् ।

इति शिवरहस्ये विष्णुवचनैः शिव एव सकलजगदीश्वर इति सिद्धम् ।

एतैः साकम्—'एकः पुरस्ताद् य इदं बभूव यतो बभूव भुवनस्य गोप्ता।' (नृ० पू० २।८) 'सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सम्प्रसूयन्ते, सर्वाणि चेन्द्रियाणि सहभूतैः।' (अथर्वशी० २) 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। तस्यावयवरूपेण व्याप्तं सर्वमिदं जगदि' (श्वेता० ४।१०) त्यादि श्रुतिभिर्ब्रह्मविष्णवादि-सकलचेतनाचेतनात्मक-प्रपञ्चो 'यस्यैकशक्तिशकले सकलः समाप्तः'।

'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्'। (गीता १०।४२) इत्यादिवचनैश्च यस्य परमेश्वरस्य या शक्तिस्तस्या लेशे अव्यक्तप्रकृतिः।

शक्तिः प्रथमसम्भूता शान्त्यतीतपदोत्तरा।
ततो माया ततो व्यक्तं शिवाच्छक्तिमतः प्रभोः॥

(वायवीय ९।३)

इतिवायुवचनात्।

पूर्वोक्तब्रह्मेन्द्रादिचेतनवर्गसहितं सकलं जगत् तस्मिन्नवस्थितम्। कृत्स्नवाचिसकलशब्दो ब्रह्मविष्णिवन्द्रादि-सकलसुरासुरसमेतब्रह्माण्डान्तानां तत्रावस्थितिमाह—

इतीदृशानामण्डानां के ये ज्ञेयाः सहस्रशः।
सर्वगत्वात्प्रधानस्य तिर्यगूर्ध्वमवस्थिताः॥
तत्र तत्र चतुर्वक्त्रब्रह्माणो हरयो हराः।
सृष्टाः प्रधानेन सतामध्वा शंभोस्तु सन्निधिम्॥

(वायवीय १२।४२-४३)

इति शैववचनात्॥ 'सत्त्वमिति'। 'कारणं ध्येयः सर्वैश्वर्यसम्पन्नः सर्वेश्वरश्च शंभुराकाशमध्ये। (अथर्वशी० ३) 'ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्।' (महाना० १०।१०) 'ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमः।' (तदेव) 'यः परः स महेश्वरः'। (तदेव)। 'विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः'। (श्वेता० ३।४) 'तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।' (महाना० ३।२, १०।७) 'ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवः'। (भस्मजा० २।७) 'उमापतये नमो नमः'। 'उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्'। (कैवल्यो० ७) श्वेताश्वतरोपनिषदि सकलवेदान्तसिद्धकारणे हर-शिव-रुद्र-महेश्वर-ईश-ईशान-विश्वाधिकादिशब्दैः शिव एव कारणत्वेन विज्ञातः।

सर्वकारणमीशानः साम्बः सत्यादिलक्षणः।
न विष्णुर्न विरिञ्चिश्च न रुद्रो नापरः पुमान्॥

स एव सर्ववेदान्तैः सादरं प्रतिपाद्यते।
यानि वेदान्तवाक्यानि तानि सर्वाणि सत्तम॥
विश्वाधिकपराण्येव नैव विश्वपराणि वै।
अथ किं बहुनोक्तेन शिवः सत्यादिलक्षणः॥
साक्षान्निष्ठा हि शास्त्राणां नापरः सत्यमीरितम्।
शिवस्वरूपं वेदान्तैः समस्तैः प्रतिपाद्यते॥
सर्वशाखासु वस्त्वेकं शिवाख्यं ब्रह्म चिद्घनम्।
तथा तद्विषयं ज्ञानं तथैव च शिरोव्रतम्॥

इति पराशरसौरसंहितादिषु शिवः सकलवेदान्तप्रतिपाद्य इति निश्चित इत्यर्थः। पद्यैरेतैर्विश्वाधिको निखिलभुवनकर्त्ता न प्रकृतिपुरुषौ न ब्रह्मविष्ण्वादयस्त्वेतत्सहितं निखिलं जगत् यच्छक्तिलेशसम्पन्नं तत्सकलकारणं सर्वोपनिषदि शिवशम्भुरुद्र-विश्वाधिकेशानाद्यन्यतर-साधारण-शिवाभिधानश्रुतिभिः श्रीसाम्बशिव एवेति प्रतिपादितम् ॥३॥

अथ लक्षणप्रमाणाभ्याम् उपपादितस्य परशिवब्रह्मणः स्वरूपादीनाह—

आनन्दाद्यः कमपि च घनीभावमास्थायरूपं
शक्त्या सार्द्धं परममुमया शाश्वतं भोगमृच्छन्।
अध्वातीते शशिदिवसकृतोः कोटिदीप्ते (पे) कपर्दिन्!
आद्ये स्थाने विहरसि सदा सेव्यमानो गणेशैः ॥४॥

हे शिव! (तुम वह हो) जो आनन्द से घनीभूत किसी अनिर्वचनीय रूप को धारण कर, शक्तिभूता उमा देवी के साथ सर्वोत्कृष्ट एवं सार्वकालिक भोग को प्राप्त करते हुये, षडध्वों से परे, करोड़ों चन्द्र और सूर्य की दीप्ति से प्रकाशित परम पद में गणाधिपों से सेवित होते हुये सदा विलास करते हो॥ ४॥

'ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः स एको ब्रह्मण आनन्द' इति तैत्तिरीयोपनिषदा मनुष्यगन्धर्वादिब्रह्मान्तानां 'आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः।' (तैत्ति० २।८।२) 'तस्य इयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्, स एको मानुष आनन्द॥' (तदेव)। इति मानुषानन्दमुक्त्वा 'ते ये शतं मानुषा आनन्दा इति' मानुषानन्दादुत्तरं शतगुणमधिकतयाऽभ्यस्तस्य स्वोत्तरकक्ष्या-विश्रान्तशतगुणानन्दोपन्यासाभावान्निरतिशयत्वेन श्रुतो 'यो ब्रह्मानन्दः॥' (तदेव)। 'रसो वै स' (तदेव २।७।२) इति रसपदश्लेष-सामर्थ्यात्तस्य आनन्दस्य द्रवरूपत्वम्। अत एव 'अनन्तानन्दबोधाम्बुनिधिम्' (सू० सं० १।२) इति सूतसंहितावचनादप्युक्तो ब्रह्मानन्दः।

'यदेष आकाश आनन्दो न स्यादि' (तै० २।७।२) त्याकाशानन्दपदयोः सामानाधिकरण्याच्चिदम्बरशक्तिरेवानन्दः । तद्रूपत्वमम्बिकायाः—

शिवानन्दमनाद्यन्तं स्वात्मानं प्रददौ शिवा ।
यस्य सा परमा देवी शक्तिराकाशसंज्ञिता ॥

इति सनत्कुमार-कूर्मवचनाभ्यामुक्तम् ।

तस्यानन्दाद्येरनिर्वचनीयं कथमपि घनीभावम् ।
तवानन्तान्याहुः शुचि परमरूपाणि निगमाः ॥
तदन्तर्भूतं सत्पदसदनिरुक्तं त्विदमपि' ।

इति विष्णुमहिमवचनात् । 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । (तैत्ति० २।१।१)

सत्यं ज्ञानमनन्तं च स्वरूपं परवस्तुनः ।
घृतकाठिन्यवन्मूर्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा ॥

इति श्रुतिपुराणनिरूपितमानन्दघनभावं रूपं आस्थाय–स्वीकृत्य ।

यस्या स्वरूपमास्थाय विरूपो रमते शिवः ॥

इति शिवरहस्यः । ब्रह्मणश्चिदाकाशविग्रहत्वमाकाशशरीरं ब्रह्मेति श्रुतिप्रसिद्धम् ।

'ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।
ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।

(महाना० १०।१०)

अजात इत्येव कश्चिद् भीरुः
प्रपद्यते रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखम् ।
नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां
दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ॥'

(श्वेता० ४।२१)

अजातमिममेकैकं मत्त्वा जन्मनि भीरवः ।
रुद्रस्यास्य प्रपद्यन्ते रक्षार्थं दक्षिणं मुखम् ॥

(वायवीय ६।४१॥)

ध्येयाऽऽद्यन्तविनिर्मुक्ता या मूर्तिः श्रुतिदर्शिता ।
स्वात्मरूपपरानन्दपरशक्तार्धविग्रहम् ॥
घृतरीतिघनीभूतसच्चिदानन्दलक्षणम् ।

इत्याद्यनेकश्रुतितदुपबृंहणसमुदायसमुदीरिते जननादिप्राकृतशरीरदोषविनिर्मुक्ते नित्यसिद्धचिद्घनशिवविग्रहे भावमास्थायेति पदप्रतीयमानाभूत तद्भावप्राप्त्यर्थो न विवक्षितः, तस्याप्राकृतत्वश्रवणाद् ।

अप्राकृतशरीरं तमतिमन्मथरूपिणम् ।
अप्राकृतवपुः श्रीमान् लक्ष्यलक्षणवर्जितः ॥ इति

(वायवीय ३।१७)

'एष आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सो (?) पिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्प इति (छा० उ० ८।१।५) श्रुत्या शरीरत्वसामान्येन शङ्क्यमानजरामरणादीनां निरासेन जगद्विलक्षणत्वमुपपादितम् । अप्राकृतत्वं नाम उपादानकारणरहितत्त्वम् । न च परविग्रहाणामाविर्भावतिरोभावदर्शनात् घनीभावोक्तिर्ब्रह्मीभूत इतिवदाविर्भावार्थकमस्त्विति वाच्यम् ।

अन्यत्र तथात्वेऽपि सोमलोकस्थविग्रहस्य सततोदितत्वात् । तथोक्तम्--

'चिद्घन एको व्यापी नित्यः सततोदितः प्रभुः शान्तः ।

(त० प्र० १)

तद्वदनुग्रहणं प्रोक्तं सतोदितस्यास्येति तत्त्वप्रकाशे । स सोमलोकः क वर्तत इत्यत आह—अध्वातीतेति । प्रपञ्चो ह्यध्वशब्दार्थः । ते च--

मन्त्राध्वा च पदाध्वा च वर्णाध्वा भुवनाध्वकः ।
तत्त्वाध्वा च कलाध्वा च षडध्वान इमे मताः ॥

वायवीय २९।१०-१३

इति शैवप्रसिद्धाः । वेदेऽपि निरुक्ताः । 'घनामध्वपतेः श्रेष्ठस्याध्वनः पारमशीयेति ।' 'सोऽध्वनः पारमाप्नोतीति ।'—

अध्वात्मकं तु त्रितयं शिवविद्यात्मसंज्ञितम् ।
तत्त्रैगुण्यं त्रयीसाध्यं संशोध्यं च पदैषिणाम् ॥
अध्वातीतं तुरीयाख्यं निर्वाणममृतं पदम् ॥

इति अध्वातीतसोमलोकाख्यपरशिवपदप्राप्तुमिच्छतामेते शोध्यत्वेन उक्ताः ।

लोकेच्छापि यतो वाचो निवृत्ता मनसा सह ।
तदूर्ध्वमुन्मना लोकात् सोमलोकमलौकिकम् ॥

इति शैववचनात् षडध्वात्मकप्रञ्चातीतत्वादलौकिकः सोमलोकः ।

दिनकृत्कोटिसंकाशं स्थानमाद्यमुमापतेः ।
सर्वकामसमायुक्तं विशुद्धं नित्यमक्षयम् ॥

इति शिवधर्मोत्तरप्रसिद्धसोमलोकमाह--'शशिदिवसकृदिति' । अतः—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारका
नैमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥
कठोप २।२।१५॥ मुण्डक २।२।१०॥ श्वेता० ६।१४ ॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः । (गीता १५।६)

इति सूर्याद्यविषयत्वमुक्तम् । 'अथ यदतो परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेषु । (छा० उ० ३।१३।७) 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, (कठ १।२।१५) "स्वर्गो लोको ज्योतिषा वृतः" (अरुणो० १) इत्यादिश्रुतिमूलतया तल्लोकविषये प्रवृत्तानि वचनानि ब्रह्मोत्तरखण्डे—

भगवतः[1] परमेशस्य कीदृशो लोक उत्तमः ।
तस्य मे लक्षणं ब्रूहि यद्यस्ति मयि ते कृपा (दया) ।

इति पृष्टवन्तं कञ्चिद्राजानं प्रति गौतमस्य प्रतिवचनानि ।

ब्रह्मादिसुरनाथानां लोकेष्वपि सुदुर्लभाः ।
गुणवृत्तिं विनिस्तीर्य सम्प्राप्ता यत्र योगिनः ।
न पतेयुः पुनः सर्वे स लोकः पारमेश्वरः ॥
यत्र वासं न कुर्वन्ति क्रोधलोभमदादयः ॥
यत्रावसानं जन्मादेः स लोकः पारमेश्वरः ।
सर्वेषां निगमानां च यदेकं क्षेत्रमुच्यते ।
यस्मान्नास्ति परं किञ्चित् तत्पदं पारमेश्वरम् ॥
प्रत्याहारासनध्यानप्राणसंयमनादिभिः ।
यत्र योगपथैः प्राप्तुं यतन्ते योगिनः सदा ॥
तेजोराशौ सदा लीना दुर्विभाव्ये मनोरमे ।
अहोरात्रादिसंस्थानं न विन्दन्ति कदाचन ॥ इति ॥
ब्रह्मोत्त० ३।१४४,१४५,१४७-१५०,१५३ ॥

तद्धि परमशिवानादिभूतचिच्छक्तिमयत्वादाद्यम् ।

यत्र देवः सदानन्दनिर्मलज्ञानरूपया ॥
आस्ते देव्या सह क्रीडन् स लोकः पारमेश्वरः ॥
ब्रह्मोत्त० ३।१५१ ॥

'सोमः सहोमया यत्र नित्यं निवसतीश्वरः ।

---

१. भगवन् इति पा० ।

२ आ० स्तू०

इतिस्कान्दशैवोपबृंहितया 'उमासहायं परमेश्वरं प्रभुमिति' कैवल्यश्रुत्या (कैवल्योप० ७) निरुक्तमर्थमाह—शक्त्येति ।

पावकस्योद्धृतेवेयं मुग्धांशोरिव दीधितः ।
चन्द्रस्य चन्द्रिकेवेयं शिवस्य सहजा ध्रुवा ॥

इति वचनोपबृंहितया "सह स्वस्राम्बिकया" इतिश्रुत्या निरुक्तम्—शिवाविनाभूतया चिदम्बरशक्त्या—

सा शिवा करुणामूर्तिर्जगन्माता त्रयीमयी ।
शिवाभिन्ना परानन्दा शङ्करस्यापि शङ्करी ॥

इति ब्रह्मणोक्तया शिवानन्दरूपया सहेत्यर्थः । निरतिशयत्वात् परमम् । चिन्मयत्वात् शाश्वतं भोगं भोग्यान् । 'अस्मिन् कामाः समाहिताः' इति प्रसिद्धानन्दमयान् काम्यान् दिव्य-वन-वृक्ष-नदी-समुद्रापराजिताख्यपुर - हिरण्मयगृह - दिव्यविमान - सुरभिचन्दन - मदपवनादि-नानाविध-विशेष-संस्थान-रूपान् । 'आकाश एव खलु ब्रह्मलोकाः ओताश्च प्रोताश्च, इति बृहदारण्यकश्रुते (३।८।४,७) राकाशपर्याये निरतिशयानन्दे सोमलोके सर्वे पदार्था निरतिशयपरमानन्दमया भासन्ते । तथोक्तम्—

शम्भोर्ज्ञानक्रियेच्छाबलकरणमनः शांतितेजः शरीर-
स्वर्लोकागारदिव्यासनवरमहिषीभोग्यवर्गादिरूपाः ।
सर्वैरेतैरुपेता स्वयमपि च परब्रह्मणस्तस्य शक्तिः
सर्वाश्चर्यैकभूमिर्मुनिभिरभिनुता वेद तत्राभियुक्तैः ॥

इत्यद्वैताचार्यैः । 'किं तन्न यद्भवसि देवि शशाङ्कमौलेः' इति विशिष्य परिगणनानुपपन्नेति कालिदासैः शिवविषये 'यत्त्वं न भवसि तत्किम्' इति सर्वस्यापि देवीरूपत्वमुक्तम् । तन्मयान् काम्याननुभवन्—

तत्रोद्यानमनुप्राप्तो देव्या सह महेश्वरः ।
रराम रमणीयासु कनकद्युतिभूमिषु ॥
ततः परं परतरे विहाररससागरे ।
देवीदेवौ परां क्रीडामव्रीडौ चक्रतुर्दृढम् ॥
अमन्दपरमानन्दकल्लोलत्पलितौ शिवौ ।
स्वशिखाकारमालोक्य तुष्टौ पुष्टौ परस्परम् ॥
एवं क्रीडाविनोदेन विहारनिरतौ सदा ॥

इति शिवरहस्योक्तरीत्या 'हे शम्भो, त्वं विहरसि ।' 'सदेति' । कालानवच्छिन्नत्वाच्छिव-तल्लोक-तत्रत्यपदार्थानामित्यर्थः ।

अथान्तःपुरचारिण्यो देव्यो दिव्यविभूषणाः।
अन्तरङ्गा गणेन्द्राश्च देवं देवा सिषेविरे॥

इति शैववचनमाह—सेव्यमानो गणेशैरिति। 'शृण्वन्ति विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः। यस्य प्रयाणमन्वन्यविद् ययुर्देवा देवस्य महिमानमर्चतः।' (श्वेताश्व० २।५) 'दिव्या गणा बहुरूपाः पुराणा' इत्यायुष्यसूक्ते। "यं देवा देवा इति" देवव्रतसामनि। 'इषुमद्भ्यो धन्विभ्यश्चेतीत्यादि' रुद्राध्यायादिप्रतिपादितैर्गणैरित्यर्थः। ते च गणाः द्विविधाः पाशमुक्ताः नित्यसिद्धाश्चेति।

ये च निर्धूतसंसाराः प्राप्ताः शैवं परं पदम्।
नित्यमुक्ताश्च ये चान्ये तेऽपि दृष्टा गणेश्वराः॥

इति 'पञ्चावरणस्तवे'।

रुद्रा रुद्रसमप्रख्याः प्रमथाः प्रथितौजसः।
भूताख्याश्च महावीर्या महादेवसमप्रभाः॥
नित्यमुक्ता निरुपमा निर्द्वन्द्वा निरुपद्रवाः।

इति शैवे। ये च पाशुपतव्रतानुष्ठानपूर्वकमीश्वरध्यानयोगनिरताः परशिवप्रसादेन सोमलोके शिवसायुज्यं प्राप्तास्तेषां स्वरूपं शिवधर्मोत्तरे—

ये सम्प्राप्ताः परं स्थानं ध्यानयोगरता नराः।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरे संसारसागरे॥
संप्राप्य तत्पदं दिव्यं समस्तक्लेशवर्जिताः।
सर्वज्ञाः सर्वगाः शुद्धाः परिपूर्णा महेश्वराः॥
शिवतुल्यबलोपेताः परं शिवपुरं गताः॥ इति।

सर्वेषामेतेषां महिमजातं सौषुप्तिकादिषूपवर्णितम्।

कामकाराः सदाः सिद्धास्त्रैलोक्यस्येश्वरेश्वराः।
नित्यानन्दाः प्रमुदिताः वागीशा वीतमत्सराः॥ इति।

इदमेवेश्वरं शरणं गतानां साध्यं शिवपदप्राप्तिरिति फलम्।

'मत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।'

(गीता १८।६२)

इति भगवताप्युक्तम्।

अथ केयं सायुज्यरूपा मुक्तिः? उच्यते—
सार्वज्ञाद्यं शिवैश्वर्यं लब्ध्वा स्वात्मनि राजते।
तत्सायुज्यमितिप्राहुर्वेदागमपरायणाः॥

इति शिवधर्मवचनात् पारमेश्वर-सार्वज्ञादि-षड्गुणैश्वर्यप्राप्तिरूपः—

समस्तदुःखनिर्मुक्तः स्वस्थात्मा स सुखी सदा ।
सर्वज्ञः परिपूर्णश्च मुक्त इत्यभिधीयते ॥

इति शिवधर्मोक्तेः । संसारपाशनिवृत्या सकलदुखःनिवृत्तिः । सर्वज्ञत्वादिगुणैः परमेश्वरसदृश इत्यर्थः । 'ब्रह्मवेद ब्रह्म भवति' इति श्रुतेः ।
'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चित् (तैत्ति० २।१।१) इति सर्वज्ञत्वादिगुणविशिष्टब्रह्मणा स्वयमपि तथा भूतः सन् सर्वान् कामान् युगपदश्नुते--अनुभवतीति निरूपणात् । 'स एको ब्राह्म आनन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्येति (तैत्ति० २।८) ब्रह्मानन्दो मुक्तस्यापि निरूपणात् तत्साधर्म्यमेवोक्तम् । 'निरञ्जनः परमं साम्यमुपैतीति' श्रुतिः (मुण्डक ३।१।३) कण्ठरवेण ब्रह्मणा साम्यमाह--'मुक्तः शिवसमो भवेत्' 'साध्यं शिवसमानता ।' 'मम साधर्म्यमागता' (गीता ४।१०) इत्यादिनैव शिवधर्मगीतादिषु तच्छ्रुतिवाक्योपबृंहणवचनैरपि स्युः । 'मुक्तं मुक्तस्य शिवसाम्यतः' । भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च । 'ब्राह्मेण जैमिनेरुपन्यासादिभ्यः' । 'उत्तराच्चेदाविर्भूतस्वरूपस्त्वित्यादि (ब्र० सू० १।३।१९ ॥) सूत्रैरपहतपाप्मात्वा हि ब्रह्मधर्मा आविर्भूतस्वरूपस्य मुक्तस्योपवर्णनात् पाशुपतव्रतानुष्ठान-विगलितमलमायाद्यशैवपाशाः परमेश्वरपरमप्रसादात्—

पुरं मदीयमासाद्य पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।
परमं मम साधर्म्यं प्राप्य निवृ तिमाप्नुयुः ।।

इति शैवे शिववचनादि सर्वं समीचीनम् ॥ ४ ॥

अथ—

ध्यानेन तपसा यज्ञैः पूजया च मुहुर्मुहुः ।
प्रीणनीयो महादेवः सर्वदा मुक्तिकांक्षिभिः ॥

इति शिवरहस्योपबृंहिततमेन शिववचनेन 'ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेन' (बृहदा० ४।४।२२) इति श्रुत्यभिहितान्मुमुक्षुभिः कर्त्तव्यधर्मानाह—

त्वं वेदान्तैः प्रथितमहिमा गीयसे विश्वनेतः
त्वं विप्राद्यैर्वरद निखिलैरिज्यसे कर्मभिः स्वैः ।
त्वं दृष्टानुश्रविकविषयानन्दमात्रावितृष्णै—
रन्तर्ग्रन्थिप्रविलयकृते चिन्त्यसे योगिवृन्दैः ॥ ५ ॥

---

१. विविध पा० ।

विख्यात प्रभाव वाले हे जगत् के नायक ! तुम उपनिषदों द्वारा स्तुत होते हो। हे वरदायक ! (कर्मकाण्डी) ब्राह्मण आदि (अथवा ब्राह्मण-श्रेष्ठों) से अपने सम्पूर्ण कर्म कलापों द्वारा पूजे जाते हो। लौकिक एवं वैदिक अनुष्ठानो से प्राप्य विषयों के आनन्द की स्वल्पता के कारण उनसे विरक्त योगियों के समूह द्वारा हृदय-ग्रन्थि के विमोचन के लिये तुम्हारा ही चिन्तन किया जाता है ॥ ५ ॥

हे शिव, त्वं समस्तवेदान्तैः प्रथितमहिमा प्रख्यातप्रभावो गीयसे स्तूयसे 'एतावानस्य महिमा अतो ज्यायांश्च पुरुषः' (ऋग्वेद १०।९०।३) इति महिम्नैव पुरुषस्तोष्यः। तथा हि—'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' (मुण्डक १।१।९) 'एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः (अ० शि० २।७) "य इमान् लोकानीशनीभि" (श्वेता० ३।२। अ० शि० २।५) 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' (छा० उ० ६।२।१) 'एष सर्वेश्वर एष भूतपतिः एष भूतपालः' (माण्डूक्य ६) तस्मादुपसंहर्त्रे महाग्रासाय वै नमः' (अथर्वशिर ३) 'पशुपतिः पशूनाम्' 'भीषास्माद् वातः पवते'। (तैत्तिरी० २।८।१) 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः। (क० १।२।२३) 'स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु (श्वेता० ३।४) 'मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये' (श्वेता० ६।१८) इत्याद्यखिलवेदान्तैः सर्वज्ञत्व-सर्वशक्तित्व-सर्वकारणत्व-सर्वपालकत्व-सर्वसंहर्तृत्व-सर्वभर्तृत्व-मुक्तिप्रदत्व-ज्ञानप्रदत्व-मुमुक्षूपास्यादिप्रकारवत्तया गीयसे। 'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्याभ्यन्तर' इत्यन्तर्यामितया। 'विश्वाधिको रुद्रो महर्षिरिति' (श्वेता० ३।४) विश्वाधिकत्वेन च स्तूयस इत्यर्थः। तथोक्तं—

शिवेन देवदेवेन सदृशो नास्ति सर्वथा।
यस्माद्विश्वाधिकत्वेन शिवः सर्वश्रुतिश्रुतः॥
विश्वाधिकस्तु विष्णुर्वा ब्रह्मा वा न भविष्यति।
यतः श्रुतौ शिवान्यस्य विष्णोरन्यस्य वा द्विजाः॥
विश्वाधिकत्वं नैवोक्तं स्तोत्रार्थमपि सर्वथा॥

इति शिवरहस्ये।

वेदानुसारिस्मृतिभिः पुराणैर्भारतादिभिः।
श्रौतस्मार्तसमाचारैः स एवाराध्यते द्विजैः॥

इति पराशरे **शिवं प्रस्तुत्यपठितवचनैरित्याह त्वं विप्राद्यैरिति। मुमुक्षुत्रैवर्णिकैर्वेदोक्तधर्मैः शिव एवाराध्यः।**

विहाय साम्बमीशानं यजन्ते ये विमुक्तये ।
ते महातमसाऽऽक्रान्ताः न तेषां परमागतिः ॥

इतिमुक्त्यर्थमन्याराधननिषेधात् शिवान्यो न पूज्यः ।

जपहोमतपोदानयागधर्मादिभिः शिवः ।
तुष्टस्तत्कर्मफलदो भवत्येव न संशयः ॥

इति शिवरहस्यवचनादाह—'वरदेति' ।

एवमीश्वराराधनादन्तःकरणशुद्ध्या विषयदोषदर्शनाद् वैराग्यं भवति ।

विषयाश्रयदोषाणां गुणानामीश्वरस्य च ।
दर्शनादेव सततं विरक्तं जायते मनः ॥

इति *वायु*वचनात् । तैः ऐहिकामुष्मिकफले दोषदर्शनम् । तेषु शिवपदप्राप्तिप्रतिबन्धकत्वबुद्धिः ।

मार्गं पुलोमतनयाकुचशैलरोधो
वाग्देवतानयनवागुरिकानिबन्धः ।
नाभीसरःपतनमम्बुजसंभवायाः
नाथ ! त्वदीयपदलाभसुखान्तरायाः ॥

इति रावणवचनात् ।

गुणानामिति प्रतापादीनामुपलक्षणम् । तथोक्तं विश्वेश्वरसंहितायां—
ईशप्रतापगुणरूपविलासनाम्नां युक्तिप्रियेण मनसा परिशोधनं तु ।
तत्सन्ततं मननमीश्वरदृष्टिलभ्यं सर्वेषु साधनवरेष्वपि मुख्य मुख्यम् ॥
इति ।

यस्यांशकैः शरभभैरववीरभद्रैरामर्दिता हरिविरिञ्चिपुरन्दराद्याः ।
विश्वेश हन्त तव विक्रमभूरिभावे साक्ष्यं त एव समुपाददते किमन्यैः ॥
(ब्र० त० ४१)

इति ब्रह्मतर्कस्तवे शिवकृतप्रताप उक्तः ।

'सार्वज्ञत्वप्रमुखगुणैरदोषगन्धैः अत्यन्तैः युतमुदितं परं ह्यनन्तै'-रितिसांख्यमुखमर्दने शिवः सार्वज्ञाद्यगणितरमणीयगुणाश्रय इत्युक्तः । अथ 'अनन्तकल्याणगुणैकनिधिरीश्वरः' इति शैवे च ।

साक्षात्परतरस्यैव वस्तुनः सर्वसाक्षिणः ।
अस्ति मूर्तिः परा शुद्धा स्वतन्त्रा पापनाशिनी ॥
तस्यासाधारणी मूर्तिः साम्बा चन्द्रार्द्धशेखरा ।
नीलग्रीवा परानन्दप्रमोदात्ताण्डवप्रिया ॥

ब्रह्मविष्णुमहादेवैरुपास्या गुणमूर्तिभिः ।

(सूतसं० सूतगीता २।४६, ४७, ५० ॥

इति सूतसंहितापराशरयोः परमेश्वरस्यात्यन्तशुद्धा ब्रह्मादिध्येया साधारणीमूर्तिरुपपादिता ।

परीक्षार्थं हरेः पूजां कमलेषु महेश्वरः ।
गोपयामास कमलं तदेकं भुवनेश्वरः ।

इति कमलगोपनरूपो विलासः । अथर्वशिरसि—देवा ह वै स्वर्गं लोकमगमन् । ते देवा रुद्रमपृच्छन्-को भवानिति ? ॥ अ. शि १ ॥

प्रसन्नवदनस्तुष्टो देवानामग्रतः प्रभुः ।
अपाहरच्च च लीलार्थं तेषां ज्ञानं महेश्वरः ॥
तमपृच्छंस्ततो देवाः को भवानिति मोहिताः ।

इति श्रुत्युपबृंहणयोर्देवानां ज्ञानाहरणरूपः शिवकृतो विलासः ।

एवं केनोपनिषदादिषु यक्षादिरूपेण शिवविलासः । सूतसंहितादिषु चोपपादिता द्रष्टव्याः ।

'यद्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां, सकृत्प्रसंगादघमाशु हन्ति तद्' इति भागवते ।

'शिवेति नाम विमलं चाण्डालोऽपि वदेन्मुदा ।
सह तेन वदेन्नित्यं सह तेन वसेत् सदा ॥

इति पराशरोपबृंहितायामपि । अथवा 'यश्चाण्डालः शिव इति वाचं वदेत्तेन सह संवदेत्तेन सह भुञ्जीत' इति बृहज्जाबालश्रुतौ शिवनामप्रभावो वर्णितः ।

विद्यासु श्रुतिरुत्कृष्टा रुद्रैकादशिनी श्रुतौ ।
तत्र पञ्चाक्षरी तस्यां शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥

इति सकलशब्दोत्कृष्टत्वमस्यशिवशब्दस्य अभिहितमभियुक्तैः—

परलोकस्य पाथेयं मोक्षो नाम ह्यनामयम् ।
पुण्यसंघैकनिलयं शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥
शिवस्मरणमात्रेण व्यंग्येनाप्यघहारिणा ।
मोक्षलक्ष्मीरयत्नेन प्राप्तव्या नात्र संशयः ॥
शिवनामसमं नाम नास्ति नास्ति न संशयः ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते ॥

इति शिवरहस्यादौ शिवनाम्नोऽत्यन्तमहिमा वर्णितः । एवम् ईश्वर-गुण-प्रतापादीनामुपपत्तिपूर्वकपरिशीलनमेव दर्शनम् । तदेतत् प्रपञ्चे-

श्वरयोर्दोषगुणदर्शनाद् विषयवैराग्यसम्पन्नैर्मलमायादि-पाशबन्ध-निवृत्तये यमाद्यष्टाङ्गयोगनिरतैः अन्तर्हृदयकमलमध्ये चिन्त्यसे ध्यायसे ।

मोक्षार्थं शिव एवैको ध्येयः सर्वैरहर्निशम् ।
सर्वमन्यत्परित्यज्य सादरं भक्तिपूर्वकम् ॥

इति शिवरहस्योपबृंहितेन 'शिव एको ध्येयः शिवङ्करः सर्वमन्यत् परित्यज्य' (अ० शिख० २) इति अथर्वशिखावाक्येन मोक्षार्थं शिव एक एव ध्येय इत्युक्तम् ।

तस्मात् सर्वान् परित्यज्य हेयान् विध्यादिकान् सुरान् ।
शिव एव सदा ध्येयः सर्वसंसारनाशनः । (शरभोप० ३२)

इति पिप्पलादोपनिषद्यपि एवमेवोक्तम् । तथोक्तं शिखरिणीमालायाम्—

अपास्य ब्रह्मादीनमरवरसर्वानपि सुरान्
प्रसूता भूताद्यैः प्रथितविभवास्ते परमिति ।
निदानं त्वां सर्वेश्वरमपि च निर्धार्य विदधे
शिवासार्द्धं ध्येयं शिव तदपि मुह्यत्यतिलघुः ॥

इत्यप्पयदीक्षितैः । अत्र मुमुक्षूणामुपनिषत्प्रवचन-यजन-ध्यानादिकं शिवैकविषयं भाव्यमिति श्लोके पादत्रयेऽपि प्रयुक्त'त्वं'पदेन सूचितम् । अनेन प्रातिकूल्यवर्जननमपि सिद्धम् ॥ ५ ॥

अथ—

परश्चापरमश्चोभौ धर्मौ हि श्रुतिचोदितौ ।
परमो योगपर्यन्तो धर्मः श्रुतिशिरोगतः ॥
अपश्चात्माधिकारत्वाद् यो धर्मः परमो मतः ।
यत्रापरोक्षं लक्ष्येत साक्षात् पशुपतिः शिवः ॥
धर्मस्त्वपरमस्तद्वदर्थः श्रुतिमुखे स्थितः ।
स तु साधारणः प्रोक्तः सर्वेषामधिकारतः ॥

इति वेदान्तवेदप्रतिपाद्यौ परापरशब्दितौ धर्मौ अभिधाय—

'स चायमपरो धर्मः परधर्मस्य साधनमिति'

परधर्मसाधनमपरधर्मं 'त्वां वेदान्तैरि'ति पूर्वमभिधाय—

तेन धर्मेण महता श्रद्धां प्राप्य सुदुर्लभाम् ।
वर्णिनो ये प्रपद्यन्ते मामनन्यसमाश्रयाः ॥

इति पितामहप्रोक्तपरधर्मेण श्रद्धापूर्वकम् 'अनन्यान् मोचये प्रपन्नान् तेषां वर्णाश्रमा च मया भूयः प्रकल्पिता' इत्यादिना—

ज्ञानं क्रिया च चर्या च योगश्चेति सुरेश्वरि ।
चतुष्पादः समाख्यातो मम धर्मः सनातनः ॥
पशुपाशपतिज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते ।
षडध्वशुद्धिविधिना गुर्वधीना क्रियोच्यते ॥
वर्णाश्रमप्रयुक्तस्य मयैव विहितस्य च ।
ममार्चनादिधर्मस्य चर्या चर्येति कथ्यते ॥
मदुक्तेनैव मार्गेण मय्यवस्थितचेतसः ।
वृत्त्यंन्तरनिरोधो यो योग इत्यभिधीयते ॥
प्रसादान्मम योगज्ञः कर्मबन्धं प्रहास्यति ।
(वायवीय उ० १०।३०-३३, ४०)

इति वायवीयसंहितायां परमेश्वरप्रोक्तवेदान्तसिद्धपरमपाशुपत-धर्माधिकारिणामुत्तमाधिकारमाह—

ध्यायन्तस्त्वां कतिचन भवं दुस्तरं निस्तरन्ति ।
त्वत्पादाब्जं विधिवदितरे नित्यमाराधयन्तः ॥
अन्ये वर्णाश्रमविधिरताः पालयन्तस्त्वदाज्ञां ।
सर्वं हित्वा भवजलनिधौ देव मज्जामि घोरे ॥ ६ ॥

कितने ही तुम्हारा ध्यान करते हुये, इस दुस्तरभव से पूरी तरह मुक्त हो जाते हैं; और दूसरे लोग प्रतिदिन नियमानुसार तुम्हारे चरणकमल की अर्चना करते हुये तथा इनसे अतिरिक्त वर्णाश्रमविधि मे अनुरक्त जन तुम्हारी आज्ञाओं का पालन करते हुये । किन्तु उस सब को छोड़ यह मैं हे देव ! इस विषम संसार-सिन्धु में डूब रहा हूँ ॥ ६ ॥

शिव, त्वदाज्ञापरिपालकानां परधर्माधिकारिणां मध्ये कतिचन केचित् पाशुपताः महाशैवाः । 'त्वां ध्यायन्तस्ते' जाबालश्रुति-प्रसिद्धाः पाशुपताः—

मय्यर्पितमनोधियो निराहारा जितेन्द्रियाः । (गीता० ८।७)

'मामद्वैतं चतुर्थमेकमाशास्यं शिवं साम्बं संसारमोचकमावसन्तीति' स्तौति ।—

'दुस्तरं' शिवज्ञानमन्तरेण तत्तु मशक्यम् ।
यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ॥
तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति । (श्वेता० ६।२०)

इतिश्रुतेः ।

(ज्ञा) 'ध्यानयोगरतो योगी मम सायुज्यमाप्नुयात् ।।
(वायवीय उ० १०।४५)

इति शैवे शिववचनादाह—'भवं निस्तरन्ति इति ।'

अथाविरक्तचित्ता ये वर्णिनो मदुपाश्रयाः ।
ज्ञानचर्याक्रियास्वेव तेऽधिकुर्युस्तदर्भकाः ।। तत्रैव-१०।४६

इत्याह--'इतर इति ।' 'धर्मान्न प्रमदितव्यम् ।'

धर्मं धर्मतया ख्यातं श्रीमहादेवपूजनम् ।
तस्मान्न प्रमदो भूयादिति वेदेऽपि वर्त्तते । इति

श्रुतिस्मृतिभ्यामित्याह 'नित्यमिति' ।

वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि मे ।
न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीयां भगवन्तं त्रिलोचनम् ।।

इति प्रतिज्ञापूर्वकस्वीकारादिति भावः ।

न सातिशयमीदृशं पशुपतिप्रसादं विदुः
स्मरारिचरणार्चनादधिकमस्ति किं वा फलम् ।
श्रुतिश्रुतमनेकधा शिवपदाम्बुजाराधनम्
प्रधानमिदमित्यपि प्रथितमेव वेदेष्वत ।।

इति शिवरहस्यवचनादाह—'त्वत्पादाब्जमिति' । 'तदा ज्ञातेन मार्गेण वर्णिनो मदुपाश्रया' इति शिवोक्तप्रकारमनतिक्रम्येत्याह 'विधिवदिति ।'

उद्धृत्याद्य भुजद्वयं निगदितं लिङ्गार्चनं केवलम्
मोक्षोपायतया श्रुतं श्रुतिशतैस्तेनैव मुक्तिः परा ।
तत्र स्यादधिकारितापि भसितेनोद्धूलनं सर्वदा
तेनैवानुलवं त्रिपुण्ड्ररचनाफालोदितेवालिके ।।

इति शिवरहस्यवचात् । आह--'आराधयन्त' इति । शिवोक्त-विशेषनियमपूर्वक-शिवलिङ्ग-पूजापराः । तदाराधनं त्रिकरणसाध्यपञ्च-प्रकारकम् । तपःकर्मजपोध्यानं ज्ञानञ्चेति ।

लिङ्गैर्मच्छासनादिष्टैस्त्रिपुण्ड्रादिभिरङ्कितः ।
ममोपचारनिरतः कायः कायो न चेतरः ।।
मदर्चाकर्म विज्ञेयं बाह्यं यागादि नोच्यते ।
मदर्थे देहसंशोषस्तपः कृच्छादि नो मतम् ।।
जपः पञ्चाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव वा ।
रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न वेदाध्ययनादिकम् ।।

ध्यानं मद्रूपचिन्ताद्यं नात्माद्यर्थं समाधयः।
ममागमार्थविज्ञानं ज्ञानं नान्यार्थवेदनम् ॥
(वायवीय उ० १०।५१-५४)

इति पञ्चानां स्वरूपमुक्त्वा 'शैवा माहेश्वराश्चैव ज्ञानकर्मपरायणाः' इति द्विविधाः। शैवानां ध्यानम्। माहेश्वराणां बाह्यपूजनम्।

शिवार्चनसमं पुण्यं न दृष्टं न श्रुतं मया।
यदर्चनेन सुलभो मुक्तिवार्ता-करग्रहः ॥
फलं परमनिर्वाणं प्रयच्छामि बलादिव।

इति शिवरहस्यशैववचोभ्यां तेभ्योऽपि मुक्तिमीश्वरः प्रयच्छतीत्यर्थः। 'मन्दमध्योत्तमैर्भावैर्विज्ञेयास्ते नरोत्तमाः।' इति त्रिविधेषु प्राथमिकानाह- 'अन्य' इति। सर्वेऽपि पाशुपतदीक्षासंस्कारेण विगलितपशुभावा न पैतामहधर्मभाजः। अत एव—

अथ वक्ष्यामि देवेशि भक्तानामधिकारिणाम्।
विदुषां द्विजमुख्यानां वर्णधर्मं समासतः ॥
(वायवीय उ० ११।१)

इति शिवेन तानेवाधिकृत्य धर्मा निरुक्ताः।

त्रिःस्नानं चाग्निकार्यं च लिङ्गार्चनमनुक्रमम्।
दानमीश्वरभावश्च दया सर्वत्र सर्वदा ॥ (तत्रैव ११।२)

इत्यारभ्य बहून धर्मान् उक्तवा—

ध्येयस्त्वयाऽहं देवेशि सदा जप्यं षडक्षरम्।
वेदोक्तमखिलं धर्ममिति धर्मार्थसंग्रहः ॥ (तत्रैव ११।२६)

इति प्रोक्तेषु वेदोक्तधर्मेषु सारभूतो धमस्त्वेष एव इति निर्णीतः।

तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्।
यश्चों नमःशिवायेति मन्त्राभ्यासस्थिरीकृतः ॥
(बृहज्जाबालो० ५।८)

इत्यत उक्तं 'वेदोक्तमखिलं धर्ममिति'

एवं श्लोकद्वयोपपादितश्रेयःसाधनीभूतपरापरधर्मान् विहाय—

यावद्भूमौ भवेज्जन्तुस्तावद् भ्रमति सर्वदा।
संसारसागरे मग्नः पापनक्रग्रहाकुले ॥

इति शिवरहस्योक्तार्थानाह—'भवजलनिधाविति'।

एवं विधे कलियुगे दोषाणामेव शोधनम्।
महादेवनमस्कारो ध्यानं दानमिति श्रुतिः ॥

इति सकलदोषनिवर्तकपरमेश्वरप्रणामाद्यनाचरणादिति भावः ।

"वपुः प्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनि पुरा ।
पुरारे न क्वापि क्षणमपि भवन्तं प्रणतवान् ॥

इति पुष्पदन्तेनाप्येवमेवोक्तम् ।

उमासहायपूजायामालस्यं यः करिष्यति ।
स याति नरकं घोरं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥

इति वचनाद् 'घोर' इति ।

अहो कष्टमिदं घोरं कष्टसंसारमध्यगः ।
शिवार्चनविहीनोऽतस्तस्य तत्रैव मज्जनम् ॥

इत्याह—'मज्जामीति' ।

भावस्य भावानुचरस्य शम्भो कथं भवाम्भोनिधिमज्जनं स्यात् ।
त्वं चेद् भवाम्भोनिधिकर्णधारो महेश्वरः शाम्भवसंघबन्धुः ॥

इति शिवाश्रितानां न संसार इति भावः ॥ ६ ॥

किमेवं सर्वात्मना शिवपूजाद्यभावः ?—

जन्मान्तरसहस्रेषु कृतपुण्यविपाकतः ।
नृणां ब्रह्मकुले जन्म लभ्यते हि कथंचन ॥

इति ब्रह्मोत्तरखण्डोक्त(?)दुर्लभब्राह्मण्याद्याधिकाराभावाद् वा तदलाभः इत्याह—

उत्पद्यापि स्मरहर महत्युत्तमानां कुलेऽस्मिन्
आस्वाद्य त्वन्महिमजलधेरप्यहं शीकराणून् ।
त्वत्पादार्चाविमुखहृदयश्चापलादिन्द्रियाणां
व्यग्रस्तुच्छेष्वहह जननं व्यर्थयाम्येष[1] पापः ॥७॥

हे कामदमन ! श्रेष्ठ पुरुषों के इस उच्च कुल में उत्पन्न होकर भी, तुम्हारे प्रताप-सिन्धु के बिन्दु-कणों का आस्वादन करके भी, इन्द्रियों की चञ्चलता के कारण तुम्हारे चरणों की पूजा से पराङ्मुख मन होकर हाय ! यह मैं भ्रान्त-चित्त पापी तुच्छों के बीच अपने जीवन को व्यर्थ कर रहा हूँ ॥ ७ ॥

'शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते । (गीता ६।४१) इत्याह-'उत्तमाना-' मिति । 'वेदाचारयुतो विद्वान् ब्राह्मणो नाम नामत' इति विद्येश्वरसंहितोक्तवेद-तदर्थावगत्यनुष्ठानसम्पन्ना ब्राह्मणोत्तमा नामत एव ।

---

१. प्रार्थयाम्येष इति पाठान्तरम् ।

भोगान्नानाविधान् भुक्त्वा पृथिव्यां जायते क्रमात् ।
कुले महति विप्राणां प्रज्ञाशीलगुणान्वितः ॥

इति शिवधर्मवचनादाह–'महतीति ।'

किमन्यद् वक्तव्यं स्मरहरकथासागररसो
न विज्ञातो लोकैरमितमहिमा तेन सहसा ।
न बुद्धिर्मन्दानां शिवभजनसेवानुकरणे
क्षणं वा न क्षीणं यदि मरणकालेऽप्यघकुलम् ॥

इति शिवरहस्यवचनादीश्वरप्रभावपरिज्ञानाभावाद् वा इत्यत आह– 'आस्वाद्य' इति ।

शिवलिङ्गप्रभावज्ञः कोऽपि लोकत्रये महान् ।
भविष्यति न वा नास्मन्मनस्तद्वर्णनक्षमम् ॥

इति शिवरहस्योक्त्या शिवमहिमपरिज्ञाता यदि स लोकोत्तर एव । तथापि ।

प्राप्यापि जन्म मनुजत्वमुपेत्य तत्र
ब्राह्मण्यमेत्य समधीत्य च वेदविद्याम् ।
मीमांसया सह ततः परमिन्दुमौलि–
ध्यानं विहाय वसतः क्व गतिर्भवानि ॥

इति वचनात् ज्ञानस्य शिवाराधनं फलम् । तथोक्तम्—

मर्त्यत्वं खलु दुर्लभं द्विजजनिस्तत्रापि सा दुर्लभा
ब्राह्मण्यं खलु तत्र दुर्लभमभिज्ञत्वं च भक्तिः शिवे ।
सा चेदव्यभिचारिणी यदि तया लिङ्गार्चनेऽत्यादरः
तर्हि प्राप्तमुमासहायचरणाम्भोजप्रभामण्डलम् ॥

इति शिवरहस्ये । यद्यप्येवमेव तथापि—

बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।
यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ॥
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।
दुर्लभः पुरुषाणां तु नित्यमिन्द्रियनिग्रहः ॥
गीता २।५९-६०॥

इति गीताशिवरहस्याभ्याम् इन्द्रियाणां स्वातन्त्र्यात् विषयेष्वत्यन्तासक्त्या च—

किंकर्त्तव्यमतः परं बहुविधैः पापैरपारैरियं
प्रारब्धा तनुरित्युमापतिपदाम्भोजार्चने धीर्नमे ।

न ध्यानं च तदङ्घ्रिपङ्कजरजःपुञ्जं सकृद्वा स्मृतं
हा हन्तामितमायुरेवमनिशं क्षीणं किलानुक्षणम् ॥

इति वचनार्थमाह—'त्वत्पादार्चेति ।'

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥
(गीता १६।१३)

इति गीतोक्तगृहधनदारकुमारादि-सांसारिक-क्षुद्रपदार्थेषु—

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥
(गीता १६।१६)

इति गीतोक्त्या—'व्यग्र' इति ।—

शिवपूजाविहीनस्य नरके वसतिर्ध्रुवा ।
तथापि जीवनं व्यर्थमिति दुःखमजायत ॥

इत्याह—'जननमिति' ।

पापार्णवसमाकीर्णो न लिङ्गार्चनतत्परः ।
लिङ्गार्चनपरित्यागात् पुनः पापी भविष्यति ॥

इत्याह—'पाप' इति ॥ ७ ॥

अथ–'यत्पूजया परामुक्तिः सा नास्माभिः कदाचन ।
कृता भक्त्या यथाशास्त्रं किंकर्त्तव्यमतः परम् ॥

इति शिवपूजनसामग्र्यादिसम्पादनं, विध्युक्तशिवपूजनं च कर्त्तुमशक्यम्, इत्यत आह—

अर्कद्रोणप्रभृतिकुसुमैरर्चनं ते विधेयं
प्राप्यं तेन स्मरहर फलं मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः ।
एतज्जानन्नपि शिव शिव व्यर्थयन् कालमात्मन्
आत्मद्रोही करणविवशो भूयसाऽधःपतामि ॥८॥

आक, द्रोण सदृश पुष्पों से (भी) तुम्हारी अर्चना की जा सकती है। हे कामसूदन ! उसके फल के रूप में मुक्तिरूपी साम्राज्य का वैभव (अथवा मोक्ष, राज्य और वैभव) प्राप्त हो सकता है। हे आत्मस्वरूप ! दुःख है कि यह जानते हुये भी अपने समय को नष्ट कर रहा, अपना अहित करने वाला, इन्द्रियों के अधीन, मैं पुनः बहुत नीचे गिर रहा हूँ ॥ ८ ॥

हे शिव तव पूजनमति-सुलभम् ।

सुलभं न विजानन्ति महादेवार्चनं जनाः ।
शुद्धदूर्वाङ्कुरेणापि शिवपूजा विमुक्तिदा ॥

इति वचनात् ।

विविधैरर्कपुष्पैर्मां योऽर्चयिष्यति भक्तितः ।
द्रोणपुष्पैः शमीपुष्पैर्योऽर्चयिष्यति मां प्रभुम् ॥
तमूर्ध्वं नेतुमिच्छामि प्रतिज्ञेयं मम प्रिया ॥

इत्याह—'अर्कद्रोणेति' ।

अथवा न प्रयासेन केवलं शिवपूजया ।
मोक्षः संप्राप्यते मर्त्यैः शिवैकपरदेवतैः ॥

इति वचनादाह—'प्राप्यमिति' ।

लिङ्गं मङ्गलकृत्वेन यन्न ज्ञातं महात्मना ।
मङ्गलार्पिततज्ज्ञानं न प्राप्नोति सुदुर्लभम् ॥

इत्यत आह—'एतज्जानन्नपि' इति ।

महेशार्चनमेवैकं लोके सारतरं सुराः ।
तदेव घोरसंसारमहासागरतारकम् ॥

इति जानन्नपीत्यर्थः ।

यावज्जीवमुमासहायभजनैर्नेयं वयस्तत्सदा
कर्त्तव्यं द्विजपुङ्गवैरिति मुहुस्तत्रापि ये ब्राह्मणाः ।
तैस्तत्संततमेव कार्यमिति मे बुद्धिस्ततस्तद् यदि
त्यक्तं स्यात् पतितो भवत्यपि भवे तस्यैव सा यातना ॥

इत्यत आह—'व्यर्थयन्कालमिति ।'

धनादिस्नेहकृद् यस्तु स पापात्माऽतिवञ्चकः ।
आत्मघाती न शुध्येत श्रुतः शास्त्रैरनेकधा ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनादाह—'आत्मद्रोहीति ।'

मुक्त्यपेक्षाऽपि बहुधा नराणां न प्रजायते ।
परन्तु दारहारादाविच्छा सञ्जायते पुनः ॥

इत्याह—'करणविवश' इति ।

संसारसागरे घोरे ते मज्जन्ति मुहुर्मुहुः ।
ये मुहुर्न भजन्तीशं शिवं संसारतारकम् ॥

इत्याह–'भूयसे'ति ।

तस्मात्तु शिवार्चानां निष्कृतिर्नरकालयात् ।
नास्त्येव ब्रह्मकल्पान्तेऽप्येतत्सत्यं न संशयः ॥

इत्याह—'अघ' इति।

यदेवायुः पुण्यैरमितविभवैरर्जितमभूत्
तदायुः क्षीणं चेद् गिरिशभजने न क्षणमपि।
तदा धन्यं मन्ये तदिति न ततोऽप्यन्यदधिकम्
यतो वंद्यं वेदैरपिसुरगणैर्वा मुनिगणैः॥

इत्ययमर्थो मम नाभूदिति खेदेनाह—'शिव शिव' इति ॥ ८ ॥

अथ—अश्वमेधशताच्छ्रेष्ठं देवि चित्तप्रसाधनम्।
मुक्तिदं च तथा ह्येतद् दुष्प्रापं विषयैषिणाम्॥

इति वायुवचनात् सर्वार्थसाधकं मनोनिग्रहं कार्यम् इत्यत आह—

किं वा कुर्वे विषमविषयस्वैरिणा वैरिणाऽहं
बद्धः स्वामिन्वपुषि हृदयग्रन्थिना सार्द्धमस्मिन्।
उक्ष्णा दर्पज्वरभरजुषा साकमेकत्र नद्धः
श्राम्यन् वत्सः स्मरहर ! युगे धावता किं करोतु॥९॥

घोर विषयों में स्वच्छन्द विचरण करने वाले शत्रु (मन) के द्वारा इस शरीर में रहस्यमयी ग्रन्थि से—हे स्वामिन् ! बँधा मैं क्या करूँ ? हे कामहर ! घमण्ड की ज्वाला से परिपूर्ण, दौड़ रहे बैल के साथ एक ही जुये में जोत दिया गया, थक रहा बछड़ा क्या करे ? ॥ ९ ॥

'मनसो वशे सर्वमिदं बभूव।' 'नान्यस्य मनो वशमन्वियाय।'
'भीष्मो हि देवः महतो महीयान्'
'मनोवशे न्यस्य भवन्ति देवाः।'
मनश्च नान्यस्य वशं समेति।

भीष्मी हि देवः महतो महीयान् युञ्ज्याद् वशे तं स हि देवदेवः।

तं दुर्जयं शत्रुमरुंतुदं तं न विजित्य केचिदिति' श्रुतिस्मृतिभ्यां इत्याह—'विषमविषयस्वैरिणा वैरिणेति।' यत्सेवया प्रत्यवायः स विषमविषयस्तस्मिन्नप्रेरितः प्रवर्तत इति स्वैरी। विवक्षितशिवचिन्तनमपहाय पुनःपुनरन्यत्रगमनेन शिवध्यायिनो दुःखदत्वाद् 'वैरी'ति। मे 'हृदयग्रन्थिना' अभेद्यत्वात्तस्य ग्रन्थित्वोक्तिः।

'उन्मुच्य हृदयग्रन्थीन्' इति भागवतोक्तेः। शरीरे तेन सह बद्धः किं कर्त्तुं शक्नुयाम्। तत्र दृष्टान्तमाह—'उक्ष्णेति'।

अतिमदज्वराक्रान्तेन धावता वृषभेण सह।
रथाग्रावयवे बद्धो वत्सः किं कुर्यादिति।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ (गीता ६।३४)

इति गीतोक्त्या मनोनिग्रहस्त्वशक्य इत्यर्थः ॥ ९ ॥

यस्तु विज्ञानवान्मर्त्यो युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥ (कठोप० १।३।६)
समस्तेन्द्रियवृत्तिश्च प्राणो वायुः प्रकीर्तितः ।
तज्जयादिन्द्रियाण्येव निर्जितानि भवन्ति तु ॥

इति श्रुतिस्मृतिभ्यां प्राणवायुनिरोधात् सकलेन्द्रिय (जयः) सुकर इत्यत आह—

नाहं रोद्धुं करणनिचयं दुर्नयं पारयामि
स्मारं स्मारं जनिपथरुजं नाथ सीदामि भीत्या ।
किं वा कुर्वे किमुचितमिह क्वाद्य गच्छामि हन्त
त्वत्पादाब्जप्रपदनमृते नैव पश्याम्युपायम् ॥१०॥

दुर्नीति वाले इन्द्रिय-समूह को रोकने में मैं समर्थ नहीं हो पा रहा हूँ । हे स्वामिन् ! जन्ममार्ग की पीड़ा की याद कर करके डर से मैं दुःखी हो रहा हूँ । भला मैं क्या करूँ ? यहाँ क्या करना उचित है ? आज कहाँ जाऊँ ? हाय ! तुम्हारे चरणकमलों की प्राप्ति के अतिरिक्त मुझे कोई उपाय नहीं दीखता ॥ १० ॥

'बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।' (गीता २।५९) इति विद्वानपि बलवदिन्द्रियसमुदायाधीनस्तन्निग्रहं कथं कुर्यात् ।

'विषयासक्तचित्तानां ज्ञानं मोक्षश्च दूरतः ।'
'स पण्डितोऽपि मूर्खः स्याच्छक्तियुक्तोऽप्यशक्तिकः ।
यः संसारस्थमात्मानमुत्तीरयितुमक्षमः ॥'

इति स्कान्द-शिवधर्मोक्तिभ्यां इन्द्रियजयासमर्थःप्राकृतजनसदृश एव, इत्यत आह—"स्मारं स्मारमिति" ।

गर्भात् कोटिगुणं दुःखं योनियन्त्रप्रपीडनात् ।
यन्त्रेण पीडिता यद्वन्निःसारा स्युस्तिलेक्षवः ॥
तथा शरीरं निःसारं योनियन्त्रप्रपीडितम् ।

इति शिवधर्मवचनसिद्धां जननमार्गवेदनां पुनः पुनः स्मृत्वा 'हे नाथ ! भीत्या भयतोऽत्यन्तदुःखी समयोचितं किं कर्त्तव्यमिति विवेक-रहित, इत्याह 'किं वेति' ।

गर्भत्रासादिदुःखानि स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ।
दुःखनाशकरं नित्यं शङ्करं शरणं व्रज ॥

इति शिवरहस्यवचनादाह—'त्वत्पादाब्जेति'। विना त्वच्छरणम् उपायान्तरं नास्तीत्यर्थः ।

विश्वेश विश्वेश शरण्य शम्भो नान्या गतिस्त्वच्चरणं विहाय ।
अनेकपापार्दितमानसानामस्माकमाकाङ्क्षितदानदक्ष ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनादगतिकानां शिव एव गतिरिति भावः ॥१०॥

अथानेकापराधवतामीश्वरशरणमन्तरेण उपायान्तराभावमुक्तं समर्थयति—

उल्लंघ्याज्ञामुडुपतिकलाचूड ते विश्ववंद्यां[1]
त्यक्ताचारः पशुवदधुना मुक्तलज्जश्चरामि[2] ।
एवं नानाविधभवततिप्राप्तदीर्घापराधः
क्लेशाम्भोधिं कथमहमृते त्वत्प्रसादात्तरेयम् ॥११॥

हे चन्द्रकलाशेखर ! तुम्हारी संसार-पूज्य आज्ञा का उल्लङ्घन करके, सदाचार छोड़, लज्जाविहीन मैं इस समय पशु की भांति भटक रहा हूँ । इस तरह अनेक प्रकार के जन्म-समूहों में अर्जित घोर अपराधों वाला मैं आपकी कृपा के बिना कष्टसिन्धु को कैसे तर सकता हूँ ? ॥ ११ ॥

'ज्ञानं चन्द्रकलाचूड' मिति वायुवचनात् या ज्ञानचन्द्रकला सा चूडे यस्य इत्यनेन मुमुक्षूणामपि ज्ञानद इति सूचितम् । ऋते त्वत्प्रसादादित्यस्योपयोगि ।

राजाधिराजः सर्वेषां त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ।
तस्यैवानुचराः सर्वे ब्रह्मविष्णवादयः सुराः ॥

इति पराशरोक्तेर्ब्रह्मविष्ण्वादिसकलंधरं विश्वाधिकस्य न च ।

'भवदाज्ञां समुल्लङ्घ्य को वा जीवितुमिच्छति ।'
'स्वर्गेऽपि सत्यलोकेऽपि वैकुण्ठेऽपि विशेषतः ॥
अविलङ्घ्या हि सर्वेषामाज्ञा शम्भोर्गरीयसी ।'

इति शिवरहस्य-शैववचोभ्यामित्याह—'विश्ववंद्यामिति ।' एवं च 'सत्यान्न प्रमदितव्यमित्यादि' 'एष आदेशः, एष उपदेशः ॥' (तैत्ति० १।११) इति ।

सत्याद्धर्माच्च कुशलाद् भस्मनोद्धूलनादपि ।
त्रिपुण्ड्रधारणादौ न प्रमदितव्यमिति श्रुतिः ॥

---

१. विश्ववन्द्य-पाठा० । २. ०लज्जैश्च०-पाठा० ।

इति श्रुतिपराशरोक्तिरूप-शिवाज्ञासिद्ध-शिवपूजन-विभूतिधारणादि-धर्माचरणाभावादित्याह–'उल्लंघ्याज्ञामिति ।' 'धर्मान्न प्रमदितव्यमिति' शिवपूजोच्यते ।

धर्म धर्मतया ख्यातं श्रीमहादेवपूजनम् ।
तस्मान्न प्रमदो भूयादिति वेदोऽपि वर्तते ॥

इति शिहरहस्ये तथोपबृंहणात् । शिवपूजनं सर्वोत्कृष्टधर्मः ।

स्वर्गः केवलमङ्गयागसहिताद् यागात् स न व्यङ्गतो
व्यङ्ग लिंगसमर्चनं जललवैर्बिल्वीदलैर्वा सकृत् ।
तेनापारसुरालयातिविभवं स्वर्गापवर्गप्रदं
लिङ्गाराधनमेव तेन सदृशो धर्मो न लोकत्रये ॥

इति शिवरहस्यवचनात् । 'भूत्यै न प्रमदितव्यम् (तैत्ति० १।११) इति विभूतिधारणमुच्यते । 'अथातो विभूतिधारणविधिं व्याख्यास्यामो' 'भूत्यै न प्रमदितव्यमिति' हि विज्ञायते इति बोधायनैस्तदर्थतया व्याख्यातत्वात् । एवं रुद्राक्षधारणं नित्यमेव जाबालादिश्रुतिसिद्धम् । एवं शिवोक्तविशिष्टधर्माचरणविरहात् ।

बन्धो नाम मनुष्याणां प्रवाहेण पुनः पुनः ।
स एव रोचते येषां बद्धास्ते पशवो यथा ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनादाह 'पशुवदिति ।'

इष्टापूर्तविमोहितो यदि शिवं साम्बं न चाभ्यर्चयेत्
योनीनां शतकोटिमेति बहुधा दुःखी पुनर्निःसरेत् ।
निर्दारद्रविणो निरन्नजठरो निक्षेत्रदासीपशुः ।
भ्रान्तश्चित्तविपर्ययेण चरति क्ष्मामण्डलं काकवत् ॥

इति वचनादाह—'मुक्तलज्जश्चरामीति ।'

पुनर्जनिः पुनर्मृत्युः पुनश्च यमयातना ।
एवं जन्मानि नीतानि कष्टदान्येव कोटिशः ॥

इति शिवरहस्योक्तानेकजननहेतुशिवापराधभवक्लेशांम्बुधिम् ।
दिवसकर-शशाङ्क-वह्निनेत्रं त्रिभुवनसारमपारमाद्यमीशम् ।
अजरममरमप्रसाद्य रुद्रं जगति पुमानिह को लभेत शान्तिम् ॥

इति भारतवचनादाह—'कथमहमृते इति ।'

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गीता १८।६६)

इत्यभयवाक्यश्रवणात् ।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् शिवमेव समाश्रयेत् ।
तमाश्रित्यैव देवानामपि मुक्तिर्न चान्यथा ॥

इति शिवपुराणवचनाच्छिवशरणमन्तरेण न संसारनिवृत्तिरिति सिद्धम् । ननु प्रपत्तिं विना नोपायान्तरमिति कथयामि—

त्विहायेशानं त्वाऽनिशमपि कृता ये तु मनसा
सकामेनामेया सततमपराधा बहुविधाः ।
त एव क्षन्तव्याः क्वचिदपि शरीरेण वचसा
कृता नैते नूनं शिव शिव कृपासागर विभो ॥

इति विष्णुमहिमवचनात् परमेश्वरप्रार्थनया संसारसमुपार्जित-समस्तापराधाः क्षम्या एव इत्याह—

क्षाम्यस्येव त्वमिह करुणासागरः कृत्स्नमागः
संसारोत्थं गिरिश सभयप्रार्थनादैन्यमात्रात् ।
[1]अद्याप्येवं प्रतिकलमहं व्यक्तमागःसहस्रं
कुर्वन् मूर्खः[2] कथमिव तथा निस्त्रपः[3] प्रार्थयेयम् ॥१२॥

हे करुणासिन्धु शिव ! तुम इस संसार में उत्पन्न सभी अपराधों को भयपूर्ण प्रार्थना एवं विनयमात्र से क्षमा कर ही दोगे। इस समय भी प्रतिक्षण स्पष्ट रूप से हजारों पाप करता हुआ मूर्ख और निर्लज्ज मैं कैसे उस प्रकार की प्रार्थना कर सकूंगा ॥ १२ ॥

हे गिरिश, त्वं निरुपधिकरुणापारावारस्त्वमतो हर सुखदुःखमिति शिवरहस्योक्तमाह—'करुणासागरः' इति । संसारोत्थं कृत्स्नमपराधम् ।

अज्ञानेनापराधानां कणा अपि मुहुर्मुहुः ।
क्षन्तव्यास्ते महाभाग क्षमा युक्ता महात्मनाम् ॥
कृतापराधे कुर्वन्ति करुणां दीनवत्सलाः ॥

इतिवचनात् सविनयभयभक्तिप्रार्थनया हरसि । 'हर यद्यस्मत् कृतापराधं विविधं कृपया हरसि सदे'ति वचनात्—

एतावताऽपि भगवान् महादेवः कृपानिधिः ।
ददाति स्थानमुत्कृष्टं योगिनामपि दुर्लभम् ॥

---

१. यद्यप्येवं, २. मूकः, ३. निष्क्रियः ।

इति वचनात् प्रार्थनामात्रेणापराधान् सोढ्वा योगिदुर्लभमुत्कृष्टं स्थानमपि प्रयच्छतीत्यर्थः।

अस्माकमपराधास्तु भविष्यन्ति क्षणे क्षणे।
क्षन्तव्यास्त इति प्रोक्तुं लज्जास्माकं प्रजायते॥ इति॥

प्रतिक्षणं सहस्रापराधान् कुर्वन् निर्लज्जः कथं प्रार्थये इत्याह—'अद्यापीति' ॥१२॥ अथ—

सद्यः कृतमहापापोऽप्यन्तकालशिवस्मृतेः।
मोक्षं प्राप्नोत्यतः सौम्य तमिहानय सत्वरम्॥

इति शिववचनात् संसारप्राप्तसमस्तापराधनिरासपूर्वकशिवसायुज्यसम्पादकनिर्याणसमयकृतशिवस्मरणाद्युपायान्तराणां सत्त्वात्कथं गत्यन्तराभाव इत्याह—

सर्वं तर्त्तुं[१] प्रभवति जनः संसृतिप्राप्तमागः
चेतः श्वासप्रशमसमये त्वत्पदाब्जे निधाय।
तस्मिन् काले यदि मम मनो नाथ दोषत्रयार्त्तं
प्रज्ञाहीनं पुरहर भवेत् तत्कथं मे घटेत॥ १३॥

प्राण शान्त होते समय तुम्हारे चरणकमल में मन लगाकर लोग संसार में अर्जित समस्त पापों को तर जाने में समर्थ हो सकते हैं। हे स्वामिन्! यदि उस समय मेरा मन (कफ, वात और पित्त) तीनो दोषों से पीडित होकर विवेकहीन हो जाये, तो हे शिव! मेरा (संसारतरण) कैसे संभव होगा? ॥ १३॥

शिवचरणस्मरणमित्युपलक्षणम्। शिवनाम-शिवपूजा-बिल्वार्पण-लिङ्गपूजादर्शन-विभूतिरुद्राक्षधारणानां शैवानां सन्निधानादीनां मोक्षहेतुत्वप्रतिपादनात्। तथा हि—

अबुद्धिपूर्वकं वाऽस्तु बुद्धिपूर्वकमेव वा।
मन्नामोच्चरितं पुंसां मुक्तिदं मृतिकालिकम्॥
मृतिकालीनमन्नामस्मरणान्मोक्षमाश्वहम्।
दास्यामि सत्यमेवेति प्रतिज्ञेयं मया कृता॥
मरणात् पूर्वसमये शिवं सम्पूज्य यत्नतः।
व्यवधानं विना मर्त्यः शिवे लीनो भविष्यति॥
मरणात्पूर्वसमये बिल्वपत्रेण शङ्करम्।
यः पूजयति यत्नेन स शिवो भवति ध्रुवम्॥

---

१. क्षेप्तुं।

शैवाः शङ्करतत्वज्ञाः बहवः सन्ति भूतले ।
तेषां दर्शनमात्रेण नश्यत्यघकुलं क्षणात् ॥
अस्माकं मरणक्षणे यदि मुदा रेवातटे नार्मदं
लिङ्गं लोचनगोचरं नवलसद् विल्वीदलाभ्यर्चितम् ।
भस्माङ्गेऽपि विशेषतो यदि भवेद् रुद्राक्षमाला शिव-
ध्यानं शांभवसन्निधिः शिव शिवेत्युक्तिस्तदा किं भयम् ॥

इति शिवरहस्योक्तम् ।

शिवस्मरणपूर्वकं यदि भवेद्विहारस्तदा
जितं खलु जगत्त्रयं क्व यमदुर्दशा-वासना ।
क्व वासवचतुर्मुखाद्यमरभाववाञ्छा तदा
महेशचरणाम्बुजस्मरणमेव मुक्तिसम ॥

इत्येवं यदि स्यात्तदा सर्वं कुशलमेव । मरणसमये—

वातापित्तकफादीनामुल्बणात् विभ्रमं जनः ।
मरणावसरे मर्त्यः किं कुर्यादतितापितः ॥
कोटिवृश्चिकदष्टस्य याऽवस्था तामवाप्य सः ।
कर्त्तव्यं विस्मृतं सर्वं क्वाऽहं कोऽहं न वेत्ति सः ॥

इति स्कान्दादिवचनाद् इत्याहुः—'प्रज्ञाहीनमिति ।' तदा पूर्वोक्त-मेवार्थं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ १३ ॥

अथ—नास्ति मृत्युसमं दुःखं नास्ति मृत्युसमं भयम् ।
नास्ति मृत्युसमं त्रासः सर्वेषामपि देहिनाम् ॥

इति शिवधर्मोक्त्या महादुःखभयत्रासजनके मरणसमये क्व शिव-स्मरणादीनाम् अवसर इत्यनुपपत्तिमुपपादयति—

प्राणोत्क्रान्तिव्यतिकरदलत्संधिबन्धे शरीरे
प्रेमावेशप्रसरदमितक्रन्दिते बन्धुवर्गे ।
अन्तःप्रज्ञामपि शिव भजन्नन्तरायैरनन्तै-
राविद्धोऽहं त्वयि कथमिमामर्पयिष्यामि बुद्धिम् ॥

प्राण निकलने के दुःख से जब शरीर के जोड़-जोड़ टूट रहे होंगे और प्रेमावेश के फैलने से सम्बन्धियों का अपार क्रन्दन हो रहा होगा तब भीतर-भीतर ज्ञान रहने पर भी (अथवा मन ही मन में स्मरण करते हुये भी) हे शिव ! अगणित बाधाओं से बद्ध मैं तुम को अपना यह मन कैसे समर्पित कर सकूँगा ॥ १४ ॥

महातमः प्रविष्टस्य छिद्यमानेषु मर्मसु ।
यद् दुःखं मरणे जन्तोर्न तस्येहोपमा क्वचित् ॥

इति शिवधर्मवचनादाह—'दलदिति'। सर्वाङ्गव्याप्तप्राणवायुनिर्गमसम्बन्धविघटितावयवसन्धिबन्धे देहे सति—

हा तात मातः कान्तेति क्रन्दत्येव सुदुःखितः ।
मण्डूक इव सर्पेण गीर्यते मृत्युना जनः ॥

इति शिवधर्मवचनात् मध्ये प्राप्तावसरोऽप्येवमाह इत्यर्थः ।

बान्धवैः सम्परिष्वक्तः प्रियैश्च परिवारितः ।
निःश्वसन् दीर्घमुष्णेन मुखेन परिशुष्यता ॥
याचमानश्च सलिलं शुष्ककण्ठोष्णतालुकः ।
म्रियते पश्यतामेवं गले घुरुघुरायते ॥

इत्याह—"प्रेमावेश" इति ।

वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः ।
कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरुघुरायते ॥
शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः ।
वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशंगतः ॥

इति भावोऽपि । तथोक्तम् ।

'अनापृच्छ्य ज्ञातीनवशरुदितोच्छूननयनान्
गतिः का नस्तातेत्यतिकरुणमग्रे विलुठितान्,

इति मानसोल्लासे दीक्षितैरुक्तम् ।—'अन्तरिति' । कथञ्चित् प्रज्ञां प्राप्तः 'चिन्त्यमानः स्ववित्तानि कस्यैतानि मृते मयि' इत्याद्यनन्तान्तरायैरावृतः सन्—

एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्माऽजितेन्द्रियः ।
म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयाऽस्तधीः ॥

इति भागवतवचनादस्तबुद्धिः अहमीश्वरे स्वचित्तार्पणं कथं कुर्वे इत्यर्थः ।

'अतिक्रन्दद् बन्धुव्यसनजलधावार्तिसमये
कियानागन्ता ते शिवशिव हतोऽस्म्येव भवते'

इति मानसोल्लासेऽपि तथोक्तं दीक्षतैः ॥ १४ ॥

अतः—परात्परतरामरप्रवर शङ्कराधीरतां
हरादरवशान्मम त्वमसि मे गतिः सर्वथा ।
अनन्यशरणं कथं हर विहातुमिच्छा तव
प्रचोदय धियः प्रियाः सदयभर्ग नस्ते पदः ॥

इति शिवरहस्यवचनाद् गत्यन्तराभावादन्यशरणस्य ज्ञानक्रियादावसमर्थस्य मम बुद्धिचाञ्चल्यमपाकृत्य निजपदे बुद्धिं प्रेरय इति शिवस्य प्रार्थनां कृत्वा शुभस्य शीघ्रमिति न्यायादिदानीमेव ईश्वरपादारविन्दयोरात्मानम् अर्पयति ।—

अद्यैव त्वत्पदनलिनयोरर्पयाम्यन्तरात्मन्
आत्मानं मे सह परिकरैरद्रिकन्यासनाथ[1] ।
नाहं बोद्धुं शिव तव पदं न क्रियायोगचर्याः
कर्तुं शक्नोम्यनितरगतिः केवलं त्वां प्रपद्ये ॥१५॥

हे अन्तरात्मन् ! हे पार्वतीपति ! आज ही मैं अपने सहायकों के साथ अपने को तुम्हारे दोनों चरण-कमलों में समर्पित करता हूँ । हे शिव ! न तो मैं तुम्हारे पद को समझने में समर्थ हूँ और न (तुमसे सम्बद्ध) क्रिया, योग और चर्या ही करने में समर्थ हूँ । अतः दूसरा आश्रय न होने से केवल तुम्हारी ही शरण प्राप्त करता हूँ ॥ १५ ॥

'अन्तरात्मन्नि'ति प्रेरकत्वमुक्तम् । 'अद्यैवे'ति विलम्बासहत्वमुक्तम् ।

यावच्छशांकशकलामलबद्धमौलिर्न प्रीयते पशुपतिर्भगवान् महेशः ।
तावज्जरामरणरोगशताभिघातैर्देहानि दुःखविहितानि समुद्वहानि ॥

इति भारतवचनादीश्वरप्रसादमन्तरेण जननमरणात्मकसंसारानिवृत्तेः, पुनरपि—

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवानपि ।
आढ्योऽस्मि जनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मम ॥

इति स्वातन्त्र्याभिमानप्रयुक्तदृढतरसंसारबन्धभयमसहमानो—

विना महेश्वरादन्यः संसारभयनाशनः ।
नास्त्यतोऽत्यन्त-यत्नेन पूजयस्व महेश्वरम् ॥

इति वचनात् स्वात्मानमीश्वरार्पणं कृत्वा सुखी स्याम् इत्याह-'त्वत्पदनलिनयोरर्पयामीति ।'

गत्यन्तरं नास्ति कृपाम्बुराशे सत्यं ब्रवीम्यर्जननाथ शंभो ।
कृत्यं मदीयं गिरिश त्वदीयं भृत्यं पुनर्मां परिपालयाशु ॥

इति सदाऽहं शिवाधीनो जात इति भावः ।

चेतश्चिन्तय शङ्करं जप शिवं जिह्वे नमेशं शिरो
नेत्रद्वन्द्व हरं विलोकय मृडं श्रोत्रद्वयं त्वं शृणु ॥

---

१. कन्याधिनाथ ।

जिघ्र घ्राण सदा शिवाङ्घ्रिविलसद्बिल्वच्छदानन्वहं।
हस्ताम्भोरुह बिल्वकोमलदलैः शम्भुं समभ्यर्चय॥

इति कृत्यं लिङ्गसमर्चनं करतलस्येत्यादि शिवविषयकसकलेन्द्रिय-व्यापारप्रतिपादकं शिवरहस्यार्थकवचनेन ज्ञानकर्मकरणसहितमित्याह-'सहपरिकरैरिति'।

'शक्तो यथा शिवो नित्यं भुक्तौ मुक्तौ च देहिनाम्'

इति शैववचनात्परमेश्वरः शरणागत-रक्षण-समर्थ इत्याह—'अद्रि-कन्यासनाथ' इति। मोक्षसाधनतया शिवप्रोक्तज्ञानक्रियाचर्यादिपरधर्माणामनुष्ठानसामर्थ्याभावात् अनितरगतिः 'शिवमेव शरणं यामि' इत्याह 'नाहं बोद्धुमित्यादि ॥ १५ ॥

अथायमेव स्वात्मतत्त्वोपदेशेन निजाश्रितानां संसारपाशमोचको नापरोऽतः संसारभीरुभिः परमशिवः समाश्रयणीयः। तथोक्तम्—

मुक्तिहेतुपरिज्ञानं तत्प्रसादेन केवलम्।
नैव विष्णवादिदेवानां प्रसादेन न संशयः॥

इति पराशरे। तत्र जगत्स्रष्टुर्जीवोत्कृष्टस्य चतुर्मुखस्य वेदादि-शास्त्रोपदेशेन सिद्धं शिष्यादिगुरुत्वमुपपादयन् तमेव शरणं यामीत्याह-

यः स्रष्टारं निखिलजगतां निर्ममे पूर्वमीशः
तस्मै वेदान् वदति[1] सकलान् यश्च साकं पुराणैः।
तं त्वामाद्यं गुरुमहमसावात्मबुद्धिप्रकाशं
संसारार्तः शरणमधुना पार्वतीशं प्रपद्ये ॥१६॥

जिस ईश्वर ने पहले सम्पूर्ण संसार के विधाता (ब्रह्मा) को बनाया और जिसने उनको पुराण-सहित समस्त वेदों को भी पढ़ाया, उसी आत्मज्ञान के प्रकाशक, प्रथम-गुरु तुम पार्वतीपति की ही शरण को संसार से पीडित यह मैं प्राप्त करता हूँ ॥ १६ ॥

ब्रह्माणमादावुत्पाद्य तस्मै वेदपुराणोपदेष्टृत्वं शिवस्य-
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥
(श्वेता० ६।१८)

ब्रह्माणं विदधे पूर्वं वेदांश्चोपादिशत् स्वयम्।
यो देवस्तं महं बुद्ध्वा स्वात्मबुद्धिप्रसादतः॥

---

१. वेदानुदितसकलान् इति पाठान्तरम्

मुमुक्षुरस्मात् संसारात् प्रपद्ये शरणं शिवम् ।

इति श्वेताश्वतरशैवपुराणयोरुक्तम् । शिवस्यात एव आदिगुरुत्वम्

प्रतिसर्गप्रसूतानां ब्रह्मणां शास्त्रविस्तरम् ।
उपदेष्टा स एवादौ कालावच्छेदवर्त्तिनाम् ॥
कालावच्छेदयुक्तानां गुरूणामप्यसौ गुरुः ।
सर्वेषामेव सर्वेशः कालावच्छेदवर्जितः ॥

(वायवीय ६।१८, १९)

इति शैवपुराणे निरुक्तम् ।

यावत्पशुर्नैव पश्यत्यनीशः कविं पुराणं भुवनस्येशितारम् ।
तावद् दुःखे वर्त्तते बद्धपाशः संसारेऽस्मिन् चक्रनेमिक्रमेण ॥

(वायवीय ५।३६)

इति शैववचनात् पुनः पुनः संसारमेति ।

ये पुनः सर्वभावेन प्रपन्नाः परमेश्वरम् ।
तेऽपि जानन्त्ययत्नेन शिवं परमकारणम् ॥

इति शिवरहस्यवचनात् आत्मबुद्धिप्रकाशशरणतां प्रत्याह—
'अधुनेति ।'

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः पदमुपैति साम्यम् ॥

(तत्रैव ५।३७)

इति शैववचनात् परमेश्वरं शरणं गतः तत्सायुज्यं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ १६ ॥

नन्वीशानः सर्वविद्यानामिति शिवः सर्वविद्येश्वरस्तस्य ब्रह्मणे वेदपुराणोपदेशप्रयुक्तादिगुरुत्वमुक्तं युक्तम् । न स्वात्मतत्वोपदेशेन संसारपाशनिवृत्तिपूर्वकपरमानन्दप्रदत्वमुक्तमित्यतस्तादृशं शिवं शरणं गतोऽस्मीत्याह—

ब्रह्मादीन् यस्स्मरहर पशून्मोहपाशेन बध्वा
सर्वानेकश्चिदचिदधिकः कारयत्यात्मकृत्यम्[1] ।
यश्चैतेषु स्वपदशरणान् विद्यया मोचयित्वा
सान्द्रानन्दं गमयति परं धाम तं त्वा प्रपद्ये ॥१७॥

हे शिव, ब्रह्मा आदि पशुओं को मोह के पाश में बाँधकर जड़ और चेतन से परे जो अकेला ही सबसे अपना काम करा लेता है, और जो इन

१. कारयित्वात्मतुल्यम्—पाठा० ।

(बद्ध पशुओं) में से अपने चरण की शरण में आये लोगों को विद्या से मुक्त कराकर सघन आनन्दमय परम धाम को पहुँचा देता है उसी तुम्हारी शरण में जाता हूँ ॥ १७ ॥

'यः स्मरहर ।'—

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः ।
पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्तिनः ॥

(वायवीय सं० २।११)

इति शैववचनादाह—'ब्रह्मादीनिति ।'

चतुर्विंशति तत्त्वानि मायापाशगुणा अमी ।
विषया इति कथ्यन्ते पाशाः जीवनिबन्धनाः ॥

(तत्रैव २।१३, १४)

इत्याह—'मोहपाशेनेति ।' 'हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः ।'

'नमो रुद्राय देवाय स्वतन्त्रायाखिलात्मने ।
प्रधानपुरुषेशाय जगत्सर्गादिहेतवे ॥'

इति श्रुतिस्मृतिभ्यां चेतनाचेतनाद् अधिक इत्याह—'चिदचिदाधिक' इति ।

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् पशून् बध्वा महेश्वरः ।
पाशैरेतः पतिर्देवः कार्यं कारयति स्वकम् ॥

(वायवीय २।१४, १५)

इत्याह—'कार्यमिति ।'

वेदोऽयमीश्वराज्ञातः पालनीयः सुरासुरैः ।
अस्माभिरीश्वराज्ञेयमनुल्लङ्घ्यैव सर्वथा ॥

इति शिवरहस्यवचनादीश्वराज्ञारूपधर्मात् 'न प्रमदितव्यमिति' वेदोक्त-शिवाराधनरूपकार्यं कारयत्यत उक्तम्—'स्वकमिति' विशेषतो तदाज्ञा-सिद्धशिवाराधनं सर्वैरनुष्ठितमिति सुष्ठुतरं प्रतिपादितम् ।

यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं च शक्र सहामरैः ।
अर्चयध्वं सदालिङ्गं तस्माच्छ्रेष्ठतमो हि सः ॥

(अनुशा० १४।२३२)

ऋषयश्चापि देवाश्च गन्धर्वाप्सरसः तथा ।
लिङ्गं यस्यार्चयन्तिस्म तदाराध्यतमः स्मृतः ॥

(अनुशा० १६१।१७)

इत्यानुशासनिके ।

वैष्णवे च तथा ब्राह्मे लोकपालाष्टके तथा ।
पैतृकेषु च लोकेषु दिवि देवालयेषु च ॥
विद्याधरे च गंधर्वे यक्षरक्षःपिशाचके ।
गणे गरुडनागेषु तथा वै किन्नरेषु च ॥
पातालेष्वथवा स्वर्गे दानवेष्वथ सुन्दरि ।
आराधितो महादेवि लिङ्गमूर्तिर्महेश्वरः ॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा शक्रो लोकपालाश्च देवताः ।
लिङ्गार्चनरता एते मानुषेषु च का कथा ॥

इति जैमिनिभारते । तेषु पशुवर्गेषु ।

भुक्ति-मुक्तिप्रदं मत्वा मामेवगतकल्मषाः ।
भजन्ति सततं भक्त्या भवबन्धविमुक्तये ॥

इति शिववचनात् स्वशरणमागतान्—

शिवः संसारपाशेन विष्णुब्रह्मादिकान् पशून् ।
बध्वा कदाचित्कृपया मोचयत्यपि तान् पशून् ॥
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः ।

इत्याह—'यश्चेति ।'

एतादृशं पशुपतिं नित्यमानन्दरूपिणम् ।
शरणं याहि भूपाल शरण्यं सुकृतात्मनाम् ॥

इत्याह—'स्वपदशरणानिति ।'

अयोग्यानां च कारुण्याद् भक्तानां परमेश्वरः ।
प्रसीदति न सन्देहो निगृह्य विविधान् मलान् ॥

इति वायुवचनात् । इत्याह—'विद्ययेति ।'

तस्मात् पशूनां सर्वेषामहं संसारमोचकः ।
न मत्तोऽन्यः पुमानज्ञः इत्येषा शाश्वती श्रुतिः ॥
(सूतसं० मुक्तिखण्ड ४।२४)

इति सूतसंहितायां शिववचनात् मायादिपाशेभ्यस्तान् मोचयित्वा—

ब्रह्मादिसुरनाथानां लोकेष्वपि सुदुर्लभः ।
य आनन्दः सदा यत्र स लोकः पारमेश्वरः ॥
(ब्रह्मोत्तरखण्ड ३।१४५)

इत्याह—'सान्द्रानन्दमिति' ।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥
(गीता १५।६)

इति वचनादाह—'परं धामेति'।

'तदूर्ध्वममुस्माल्लोकात् सोमलोकमलौकिकमिति' पुनरावृत्तिरहितं सर्वकामसमन्वितं निरस्तसमस्तोपद्रवं सोमलोकाख्यपरशिवपुरं प्रापयतीत्याह—'गमयतीति'।

त्वदाज्ञा[1] चक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिनिभं[2]।
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता॥
यमाराध्यन् भक्त्या रविशुचिशशीनामविषये।
निरालोके लोके निवसति हिमालोकभवने॥

इति शङ्कराचार्यैरप्येवमेव (सौ० ल० ३६) निरूपितम्। यतो विश्वाधिकं शरणं गतोऽस्मीत्यर्थः ॥१७॥

अथैतच्छ्लोकोक्तसोमलोकाख्यपरमशिवपुरप्रापकजाबालश्रुतिसिद्धतारकोपदेशकब्रह्मविद्यागुरुत्वेन मोक्षप्रदं शिवं शरणं गतोऽस्मीत्याह—

ध्यातो यत्नाद्विजितकरणैर्योगिभिर्योऽविमुक्ते
तेभ्यः प्राणोत्क्रमणसमये सन्निधायात्मनैव।
तद्व्याचष्टे भवभयहरं तारकं ब्रह्म देवं
तं सेवेऽहं गिरिश सततं ब्रह्मविद्यागुरुं त्वाम् ॥१८॥

जो जितेन्द्रिय योगियों के द्वारा प्रयत्नपूर्वक भ्रूमध्य (अथवा काशी क्षेत्र) में ध्यान किये जाने पर प्राण निकलते समय स्वयं ही उनको अपने पास करके उनके संसार-भय का अपहरण करने वाले 'तारक मन्त्र' का उपदेश देता है, हे शिव ! मैं उसी ब्रह्मविद्या के प्रदाता तुम्हारी निरन्तर भक्ति करता हूँ॥ १८॥

यस्तु विज्ञानवान्मर्त्यो युक्तेन मनसा सदा।
यस्येन्द्रियाणि वश्यानि······················॥

(कठोप० १।३।६)

समस्तेन्द्रियवृत्तिश्च प्राणो वायुः प्रकीर्तितः।
तज्जयादिन्द्रियाण्येव निर्जितानि भवन्ति हि॥

इति श्रुतिस्मृतिभ्यां प्राणायामादिसाधनकलापैः निर्जितेन्द्रियैरित्याह-'विजितकरणैरिति।'

जितेन्द्रियत्वं धीरत्वमन्तःकरणनिग्रहम्।
तपो जपः स्वधर्मश्च योगयागादिकाः क्रियाः॥

---

१. तवाज्ञा। २. धरं।

निर्वाणसुखपूगस्य साधनानि भवन्ति हि ।

इति ब्रह्मवैवर्ते मोक्षसाधनत्वेन एते निरुक्ताः ।

निरुद्धवृत्त्यन्तरस्य शिवे चित्तस्य निश्चला ।
या वृत्तिः सा समासेन योगः स खलु पञ्चधा ॥

इति शैववचनादित्याह—'योगिभिरिति ।' शिवध्यानपरैरित्यर्थः ।

ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे च भ्रूमध्ये कर्णयोरपि ।
चक्षुषोः कण्ठदेशे च हृदये च तथोदरे ॥
आधारे च तथा नाभौ देहभागे तथेतरे ।
उपास्तिं देवदेवस्य श्रुतयः प्रवदन्ति हि ॥

इति पुण्डरीकपुरमाहात्म्यप्रतिपादितोपासनास्थानेषु क्वेत्याह—'अविमुक्तेति'—भ्रूमध्य इत्यर्थः । तदविमुक्तं द्विविधम् । अधिभूतमध्यात्ममिति । पराशरे—

अविभूते स्थितं मायीयस्तु ब्रह्माण्डविग्रहः ।
विराडात्मा भ्रुवोर्मध्ये सुस्थितं तस्य सुव्रत ॥

इति विराट्पुरुषभ्रूमध्य इत्याधिभौतिकम्-काशीक्षेत्रमेव । अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतो भूत्वा मोक्षी भवतीति जाबालश्रुति-बोधिततारकोपदेश उभयत्राऽपि समानः । अत्रोपदेशप्रकारविशेषो बृहज्जाबालोपनिषदि प्रोक्तः । 'तत्रैका रत्नवेदिका तत्राहमासीनः काश्यां व्यक्तकुणपान् शैवानानीयाङ्के स्वस्यैव संवेश्य भसितरुद्राक्षभूषितान् अपस्पृश्यं मा भूदेतेषां जन्म मर्त्यत्वं चेति तारकं शैवं मनुमुपदिशामि । ततस्ते मुक्ता मामनुविशन्ति विज्ञानमये सांवेन पुनरावर्तन्ते हुताशे प्रविष्टं हविरिव तत्रैव मुक्त्यर्थमुपदिश्यते शैवो मन्त्रः पञ्चाक्षरः । तन्मुक्तिस्थानं तदोङ्काररूपम् । ततो मदर्पितकर्मणां मदाविष्टचेतसां मद्रूपता भवति । नान्येषामियं ब्रह्मविद्येयं ब्रह्मविद्येयमिति ।" (बृहज्जाबाल २।१४) तथोपबृंहितं शिवरहस्ये—

किञ्च काश्यां मृतान् शैवान् शिवदेवान् शिवार्चकान् ।
शिवैकशरणानत्र समानीय ततःपरम् ॥
एतस्मिंहासने सम्यगुपवेश्य यथासुखम् ।
ममाङ्के विमले शुद्धं शैवं संवेश्य सादरम् ॥
शैवायात्यन्तशुद्धाय मुक्त्यर्थं तदनन्तरम् ।
शैवः पञ्चाक्षरो मन्त्रो मया ह्यत्रोपदिश्यते ॥ इति ॥

अथाध्यात्मिकविमुक्तप्रकारः । तच्च सर्वेषां भ्रूमध्यस्थलम् ।
अन्ये च योगिनोऽध्यात्मे भ्रुवोर्घ्राणस्य मध्यमे ॥
प्रकाशं मण्डलं शुद्धं वरणानासिकाभिधम् ।
तन्मध्ये मामकं क्षेत्रमविमुक्तसमाह्वयम् ॥
ॐकारहृदयं सूक्ष्ममुपदिश्य सुलोचने ।
तदग्रे मामनाद्यन्तमसक्तं सर्ववस्तुभिः ॥
सत्यचैतन्यसम्पूर्णसुखलक्षणमम्बिके ।
समस्तजगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम् ॥
त्वया सहितमाम्नाय वचसामप्यगोचरम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशसोमार्द्धकृतशेखरम् ॥
त्रिनेत्रं चारुमकुटं सुसम्पूर्णशुचिस्मितम ।
वरदाभयहस्ताभ्यां कालकण्ठेन चाम्बिके ॥
व्याघ्रचर्माम्बरेणापि विचित्राभरणेन च ।
उपवीतेन शुद्धेन शोभमानमतिप्रभम् ॥
गुणाभिमानिभिर्देवैर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ।
उपास्यमानमोमथमुपास्यत्वविवर्जितम् ॥
स्वात्मभूतपरानन्दप्रकाशैकघनं स्थिरम् ।
मोक्षसाधनविज्ञानसाधनत्वेन केवलम् ॥
प्राहुः सर्वमुमुक्षूणामुपास्यत्वेन मां प्रिये ।

इति पराशरोक्तप्रकारेण 'शिवध्यानरतैर्ध्यात' इत्याह—'ध्यात' इति पूर्वोक्त-ध्यान-प्रकारेण प्रसन्नो—

भगवाननन्तकालेऽत्र तारकस्योपदेशतः ।
अविमुक्तस्थितान् जन्तून् मोचयेन्नात्र संशयः ॥

इति काशीखण्डवचनादाह—'प्राणोत्क्रमणसमय' इति । पराशरेऽपि

अत्राविमुक्ते कल्याणि सदा सन्निहितस्त्वहम् ।
तेनाविमुक्तसंज्ञाऽत्र यो मामस्मिन्निरन्तरम् ॥
उपास्ते प्रीतिसंयुक्तस्तस्मै दास्यामि सुन्दरि ।
ज्ञानं मद्विषयं साक्षादविमुक्तसमाह्वयम् ॥

इति काशीखण्डे ।

स होवाचेति (सहैवाचेति ?) जाबालिरारुणेऽसिरिडामता ।
वरुणा पिङ्गला नाडी तदन्तरविमुक्तकम् ॥
सुषुम्ना तु परा नाडी त्वियं वाराणसी त्रयम् ।

तदत्रोत्क्रमणे सर्वजन्तूनां हि श्रुतौ हरः ॥
तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येन ब्रह्म भवन्ति हि ।

इति ब्रह्माण्डपुराणे ।

शम्भुस्तत्किञ्चिदाचष्टे म्रियमाणस्य जन्मिनः ।
कर्णेऽक्षरं यदाकर्ण्य मृतोऽप्यमृततां व्रजेद् ॥ इति ।

अतो—ब्रह्मा विद्यागुरुत्वाच्चत्वामेव शरणं गतः ॥ १८ ॥

अथ—अविद्याऽज्ञानमायाख्यो मलः संसारकारणम् ।

इति सौरसंहितोक्त-संसारकारणभूतो मलः ।

मलोऽपक्वश्च पक्वश्च भवेत्संसारकारणम् ।
आमेऽप्यधरता पुंसां पक्वे तूत्तरता क्रमात् ॥
तत्रोत्तरेऽप्येकमला द्विमला मध्यमा मताः ।
त्रिमलास्त्वधमा ज्ञेया यथोत्तरमधिष्ठिताः ॥
त्रिमलानधितिष्ठन्ति द्विमलैकमलाः क्रमात् ।

तथा—पश्वात्मानस्त्रिधा भिन्ना एकद्वित्रिमला क्रमात् ॥
एकद्वित्रिमलैरामैः पक्वैरेव पृथक् पृथक् ।
निदानभूतैः संसाररोगः पुंसां प्रवर्तते ॥
अस्य रोगस्य भैषज्यं ज्ञानमज्ञौषधोद्भवम् ।
भिषगाज्ञापकः शम्भुः शिवः परमकारणम् ॥

इति शैववचनात् संसारवैद्यं शिवं शरणं यामि इत्याह—

भक्ताग्र्याणां कथमपि परैर्योऽचिकित्स्यामर्त्यैः
संसाराख्यां शमयति रुजं स्वात्मबोधौषधेन ।
तं सर्वाधीश्वर भव महादीर्घतीव्रामयेन
क्लिष्टोऽहं त्वा वरद शरणं यामि संसारवैद्यम् ॥ १९ ॥

दूसरे बड़े देवताओं के द्वारा किसी भी प्रकार ठीक न किये जा सकने वाले अपने श्रेष्ठ भक्तों के संसार नामक रोग को जो अपने आत्म-ज्ञान की दवा से शान्त कर देता है, हे सर्वस्वामिन्, भव, वरद ! अत्यन्त विषम रोग से पीडित मैं उसी विश्व-वैद्य तुम्हारी शरण में जाता हूँ ॥ १९ ॥

मदर्थमेवाखिलकर्म सर्वे कुर्वन्ति भक्ता मम नान्यथैव ।
यथाशनादिष्वपि नैव सक्ताः सर्वं मदाराधनशेषमेव ॥
एते विशुद्धा शिवभावनाभिर्मुक्तौ हि तेषां न हि कृत्यमस्ति ।
तस्मात् परित्यज्य हिताहितानि मय्येव सक्ताः खलु ते कृतार्थाः ।

अन्तः परित्यज्य समस्तमन्यन्महेश्वरं शान्तमुमाद्वितीयम् ।
भक्त्यैव विश्वेश्वरमेव भक्ता ह्युपासते तैः रमते शिवोऽपि ॥

इति सनत्कुमारसंहितायां भक्तवर्यानाह—'भक्ताग्र्याणामिति' ।

'स्वाभाविको मलः पुंसां स हि संसारयत्यमून्'

इति मलसम्पादितसंसाररुजं—

'मदन्ये त्वात्मविज्ञानविहीना माययाऽऽवृताः ।
सदा संसारिणो मोच्या······················ ॥

(सूतसं० मुक्तिखण्ड ४।२३)

इति सूतसंहितायाम् शिववचनादन्यैर्ब्रह्मादिभिः कथमप्यत्यन्तप्रयासेनापि परिहर्त्तुमशक्यमित्याह—'अमर्त्यैरिति ।' अत एव सनत्कुमारसंहितायां प्रभाकरं प्रति—

त्वद्विधानां च सर्वेषां मद्भक्तानां नृपोत्तम ।
मुक्तिः करतलस्थैव पुनर्जन्मविरोधिनी ॥
मत्प्रसादान्न सन्देहः किमुताग्रे स्थिते मयि ।

इति 'तस्य मुक्तिं दास्ये' इति प्रतिज्ञाय काश्यां पाशुपतव्रतानुष्ठानं कृत्वा मणिकर्णिकायां—

दृष्ट्वा विश्वेश्वरं देवं दक्षिणामूर्तिमास्थितम् ।
तत्प्रसादात् सपत्नीकः शिवसायुज्यमाप्स्यसि ॥

(सू० सं० शिवमा० १३।१०)

इति श्रीमाधवः परमेश्वरप्रसादादेव मुक्तिमाह—

नाहं संसारमग्नानां साक्षात्संसारमोचकः ।
शिव एव हि जन्तूनां महासंसारवर्तिनाम् ।
संसारमोचकः साक्षात् सर्वज्ञः साम्ब ईश्वरः ॥

(सूतसं० यज्ञवै० २५।३९-४०)

इति सूतसंहितायामपि विष्णुवचनेन शिव एव साक्षान्मोक्षद इति निश्चितः ।

मामृते रुद्रमोमर्थं जनानां पङ्कजेक्षणे ।
को वा संसारमग्नानां साक्षात् संसारमोचकः ॥

इति पराशरे शिववचनम् ।

निदानज्ञो यथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः ।
उपायैर्भेषजैस्तद्वल्लयभोगाधिकारतः ॥
संसारस्येश्वरो नित्यं समूलस्य निवर्तकः ।
संसारवैद्य इत्युक्तः सर्वतत्त्वार्थवेदिभिः ॥

इति शैववचनादाह—'संसाराख्यां शमयति रुज' मिति ।

रोगार्तं तु भिषग् रोगाद् भैषज्यैः सुखमुद्धरेत् ।
एवं स्वभावमलिनस्वाभाव्याद् दुखिनः पशून् ॥
स्वाज्ञौषधविधानेन दुःखान् मोचयते शिवः ।

इति वचनादाह—'स्वात्मबोधौषधेनेति ।

पुनर्जनिः पुनर्मृत्युः पुनश्च यमयातना ।
एवं जन्मानि नीतानि कष्टदान्येव कोटिशः ॥

इति शिवरहस्यवचनादाह—'भव महेत्यादि ।'

अतः सर्वं परित्यज्य शिवादन्यत्तु दैवतम् ।
तमेव शरणं गच्छेत्सद्योमुक्तिं यदीच्छति ॥
विष्णुभक्त्या च मद्भक्त्या नास्ति नास्ति परागतिः ।
शम्भुभक्त्यैव सर्वेषां सत्यमेव मयोदितम् ॥

इति स्कान्दे ब्रह्मवचनादाह—'शरणं यामीति ।'

गर्भे पुंसः शुक्रपाताद् यद्दुःखं मरणावधि ।
तदेतस्य महाव्याधेर्मत्तो नान्योऽस्ति भेषजम् ॥

इति शिवगीतायां शिववचनादाह—'संसारवैद्यमिति' ॥ १९ ॥

एवं 'त्वं वेदान्तैरित्यादिना' सकलवेदवेदान्तप्रतिपादित-परममुक्ति-निदानपरापरधर्माचरणाभावेन ईश्वराज्ञोल्लंघन-शिवापराधप्राप्त-संसारामयपरिहारोपायान्तरानुष्ठानासमर्थस्य मम परमशिवप्रसादमन्तरेण न संसारात्तरणोपाय इति निश्चित्याद्यैवेत्यादि-श्लोकपञ्चकेनागतिकगतित्वादिगुरुत्वानन्दपदप्रापकत्व-ब्रह्मविद्याप्रदत्व-संसारवैद्यत्वरूपपञ्चप्रकारैः परमेश्वराय सपरिकरमात्मार्पणं विधायेदानीमनादितया 'शिवदासभावसिद्धस्य मम गत्यन्तराभावसमर्थनपूर्वकं कृतशरणवरणं अङ्गीकुरु' इति परमेश्वरं प्रार्थयते—

दासोऽस्मीति त्वयि शिव मया नित्यसिद्धं निवेद्यं
जानास्येव[1] त्वमपि यदहं निर्गतिः संभ्रमामि ।
नास्त्येवान्यन्मम किमपि ते नाथ विज्ञापनीयं
कारुण्यान्मे शरणवरणं दीनवृत्तेर्गृहाण ॥२०॥

हे शिव ! 'मैं तुम्हारा दास हूँ' यह सदा-सिद्ध निवेदन के योग्य तथ्य हैं । तुम भी जानते ही हो कि मैं निराश्रित ही इधर-उधर भटक रहा हूँ । हे नाथ ! मुझे तुमसे कुछ भी और कहना नहीं हैं । दया करके मुझ दैन्यग्रस्त का शरण में जाना स्वीकार कीजिये ॥ २० ॥

---

१. जानास्येतत्–पा० ।

सर्वेषां जीवानां परमेश्वरदासत्वं 'ब्रह्मदासा ब्रह्मदाशा' इति श्रुतिसिद्धत्त्वान्नित्यसिद्धम् ।

ब्रह्मविष्णिवन्द्रचन्द्राद्याः सुदेवाः यस्य किङ्कराः ।
यस्य प्रसादाज्जीवन्ति स देवः पार्वतीपतिः ॥

इत्यादित्यपुराणे । पराशरे शिवं प्रस्तुत्य—

'तस्यैवानुचराः सर्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।' इति ।

एवमेव शिवरहस्ये वेदैरपि निरुक्तम्—

'यस्यैते गभदासाः सकलदिविषदः' इत्यभियुक्तोक्त्या 'सिद्धं तव दासत्वं हे शिव ! त्वयि न निवेद्यम् ।'

विश्रान्तिस्थानहीनो विविधनामरूपाणि गृह्णन् भ्रमामि । 'भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि माययेति ।' (गीता १८।६१) 'त्वमेव मां भ्रामयसीति' मद्भ्रमणमपि जानास्येव । हे नाथ ! नान्यन्मया प्रार्थ्यते ।

यं पश्यति महादेवः सादरं करुणानिधिः ।
तमुद्धरत्ययत्नेन घोरसंसारसागरात् ॥

इति वचनसिद्धपरमेश्वरकटाक्षलाभायाह—'कारुण्येति' ।

अनन्यशरणाः नित्यं येऽर्चयन्ति महेश्वरम् ।
तैरेव सर्वसौख्यानि प्राप्तव्यानि न संशयः ॥

इति वचनसिद्धसौख्यलाभायेति भावः ॥ २० ॥

एवं च—

'राजाधिराजः सर्वेषां त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः'

इति पराशरोक्त्या महाप्रभौ महादेवे नरस्य झटिति स्वेष्टप्रार्थनारीतिरुपहास्यैव । 'मादित्यो न वेदेत्यादि ।'—

हरिश्चाहं च रुद्रश्च तथाऽन्ये च सुरासुराः ।
तपोभिरुग्रैरद्यापि तस्य दर्शनकांक्षिणः ॥

इति श्रुतिपुराणवचनैर्ब्रह्म-विष्णु-रुद्रप्रभृति-सकलसुरासुराः परमेश्वरदर्शनार्थं तपश्चर्यादिप्रयत्नपरा इति यदाश्चर्यम् । किञ्च तेषां नानोपायैरपि परमेश्वरपुरप्रवेशोऽपि नाभूदिति सनत्कुमारसंहितायामुक्तम् । 'एवं न शक्ताः सकलैरुपायैः प्रवेष्टुमीशस्य महापुरीं तामिति ।' इत्याशङ्कां परिहरन् 'रक्षिष्यतीति विश्वास'मुपपत्तिपूर्वकं द्रढयति—

ब्रह्मोपेन्द्रप्रभृतिभिरपि [1]स्वेहितप्रार्थनाय
स्वामिन्नग्रे चिरमवसरस्तोषयद्भिः प्रतीक्ष्यः ।

---

१. स्वेप्सित—पा० ।

द्रागेव त्वां यदिह शरणं प्रार्थये कीटतुल्यः[1]
तद् विश्वाधीश्वर तव कृपामेव विश्वस्य दीने ॥ २१ ॥

हे नाथ ! आपको प्रसन्न कर रहे, ब्रह्मा, विष्णु सदृशों को भी अभीष्ट लाभ की याचना के लिये आगे आकर दीर्घकाल तक अवसर की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। (उनकी तुलना में) कीड़े के सदृश मैं जो शीघ्र ही यहाँ तुम्हारी शरण की याचना कर रहा हूँ, हे विश्वाधीश्वर ! वह दीनो के प्रति तुम्हारी कृपा पर विश्वास के कारण ही है ॥ २१ ॥

सनन्दनादियोगीन्द्रैर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमैः ।
सर्वैः सुरैश्च यक्षैश्च सहादित्यैश्च दानवैः ॥
सिद्धविद्याधरैश्चैव लोकपालैश्च सानुगैः ।
सेवाक्षणं वीक्षमाणैः परितश्चत्वरे स्थितैः ॥

इति वचनात् पूजाजपस्तुतिनमस्कारादिनियमपूर्वकमीश्वरसमाराधनपरैर्ब्रह्मादिदेवैः स्वेष्टप्रार्थनाय शिवस्य समयः प्रतीक्ष्य एव। तदाऽज्ञो जन्तुरनीशोऽहं त्वां सपदि, 'भव ! भवदन्यं न वयं यामः सकृदपि शरणं मरणमेवेति' त्वदेकशरण इति। हे शिव 'शरणं प्रार्थय' इति यत्तद्दीने अनन्यशरणे जने तव कृपा या वर्तते तामेव विश्वस्य 'मम रक्षां करिष्यत्येव' इति निश्चित्य त्वां प्रार्थय इति ॥ २१ ॥

अथ वेदवेदान्तोदितधर्माचरणप्रीतपशुपतिप्रसादादखिलपाशमुक्तः शिवसमो भवेदिति पूर्वं बहुधा निरूपितम्। तथास्थितस्य गतिरस्त्येव, तद्धर्माचरणमशक्यमिति धर्महीनस्यान्तःकरणमतिमलिनं सत् सर्वदा पापासक्तम्।

अतः सुकृतहीनानां न शर्म न कलेर्भयम्।
भयात्प्रमत्तो न भवेत् कलौ सुकृततत्परः ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनात् तन्मनोऽनिग्रहाशक्तः संसाराख्ये अन्धकूपे नरकविशेषे वा विषीदन् विषादं प्राप्नुवन् तस्मादूर्ध्वं गन्तुमिच्छतो मम।

संसारघोरकूपेषु पतितस्य मुहुर्मुहुः।
न भवन्तं विना मे स्यादन्यच्छरणमीश्वर ॥

इतिवचनसिद्धशिवशरणमेव करावलम्बनं नान्यदिति कथयन् कार्पण्यमेवोपपादयति—

कर्मज्ञानप्रचयमखिलं दुष्करं नाथ पश्यन्
पापासक्तं हृदयमपि चापारयन् सन्निरोद्धुम्।

---
१. कल्पः—पा०।

संसाराख्ये पुरहर महत्यन्धकूपे विषीदन्
हस्तालम्ब[1]प्रपदनमिदं प्राप्य ते निर्भयोऽस्मि ॥२२॥

हे नाथ ! कर्म और ज्ञान सबको अतीव कठिन समझता हुआ, और पाप में रत हृदय को रोकने में असमर्थ हो रहा, हे त्रिपुरान्तक ! संसार नामक घोर अन्धकूप में दुःख पा रहा, मैं आपके हाथ का यह सहारा पाकर भयरहित हो गया हूँ ॥ २२ ॥

अत्र 'पुरहर' इति शिवसम्बोधनं तस्य सकलसंसारपाशनिर्वतकत्व-सूचकम् । पुरशब्देन प्रकृतित्रयशरीराणि गृह्यन्ते । 'ब्रह्मपुरे दहरमिति' (छांदो० ८।१।१) श्रुतिप्रसिद्धानि । तानि हरतीति शिवः पुरहरः ।

संसारागाधकूपेषु ते पतन्ति नराधिप ।
ये नार्चयन्ति यत्नेन महादेवं जगत्प्रभुम् ॥

इतिवचनादीश्वराश्रयणविरहात् संसारकूपपतनम् । तस्माद् उद्धारः शिवप्रपदनादेवेति सिद्धम् ॥ २२ ॥

ननु किमेवं मोक्षविषये शिवाश्रयणमेव कार्यमिति निर्बन्धः ।

सम्प्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ।
विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

इति भागवते भगवत्प्रसादात् ब्रह्मानन्दावाप्तिः । 'मोक्षमिच्छेत् जनार्दनात्' (भागवत २।१।) इति कण्ठतः प्रतिपादनात् च विष्णोः सकाशादपि मुक्तिसंभवादिति चेदत आह—

त्वामेवैकं हतजनिपथे[2] पान्थमस्मिन्प्रपञ्चे
मत्वा जन्मप्रचयजलधेर्बिभ्यतः पारशून्यात् ।
यत्ते धन्याः सुरवर मुखं दक्षिणं संश्रयन्ति
क्लिष्टं घोरे चिरमिह भवे तेन मां पाहि नित्यम् ॥२३॥

जन्मादिमार्ग इस विश्व में एकमात्र तुमको ही मुये वाले यात्री समझ कर अपार जन्मसमूह के सिन्धु से डर रहे सौभाग्यशाली जन तुम्हारे जिस दक्षिणमुख का, हे सुरश्रेष्ठ ! आश्रय लेते हैं, उसी मुख से इस दुःखमय संसार में क्लेश पा रहे मेरी सदा रक्षा करो ॥ २३ ॥

हे शिव ! अस्मिन् प्रपञ्चे जन्मजरामरणरूपमार्गे सञ्चाररहितं त्वामेकमेवेति 'अजात' (श्वेता० ४।२।२१) इत्येव कश्चिद् भीरुः प्रपद्यते रुद्रेति न कारणं सम्प्रसूयते । 'नित्यो नित्यानामिति ।' ('श्वेता०

१. प्रपतन–पा० । २. व्यर्थ–पा० ।

६।१३) 'तमक्रतुं पश्यति वीतशोकः (श्वेता० ३।२०॥ कठ १।२।२४)
इत्यादि श्वेताश्वतराथर्वशिखा-तैत्तिरीयादिवाक्यैः ।

'कारणानां च यो धाता ध्याता परमकारणम् ।
न सम्प्रसूयतेऽन्यस्मात् कुतश्चन कदाऽपि न ॥'
'अहमप्राप्तसंसारः सर्वज्ञश्च स्वभावतः ।'

इत्यादिशैवस्कान्दवचनैश्च मत्वा निश्चित्य ।

धन्यास्त एव ये नित्यं पूजयन्ति महेश्वरम् ।
ये शिवाचारनिरतास्ते धन्या धन्यकृत्तमाः ॥

इति वचनादित्याह—'धन्या' इति । अनादितया प्रवर्तमानात् जननमरणरूपाद् अपारात् संसारपारावाराद् भयं प्राप्तास्तव दक्षिणं मुखमाश्रयन्ति इति यत्तस्मादेव हेतोः हे सुरवर ! विश्वाधिक इत्यर्थः । तथोक्तं पराशरे देवताधिक्याध्याये—'अचेतनेभ्यः सर्वेभ्यश्चेतना अधिका उत' इत्यादिना प्रजापतिपर्यन्तम् अधिकमुक्त्वा—

प्रजापतेरपि ब्रह्मा ब्रह्मणो विष्णुरास्तिकः ।
विष्णोरपि हरस्तस्मान् मायी साक्षान्महेश्वरः ।
ततोऽधिकतरः साक्षाच्छिवः साम्बः सनातनः ।
तदन्यद्विश्वमीशानः स तु विश्वाधिकः शिवः ॥

इति शिवाधिक्यपरिज्ञानस्य मुक्तिसम्पादकत्वमुक्तं तत्रैव ।

आधिक्यं सर्वदेवेभ्यो मनुते शङ्करस्य यः ।
संसारसागरं तीर्णो मुक्तिपारं स गच्छति ॥ इति ॥

ते दक्षिणं मुखम् दक्षिणामूर्तिम् ।

अजातमिममेवैकं मत्वा जन्मनि भीरवः ।
रुद्रस्यास्य प्रपद्यन्ते रक्षार्थं दक्षिणं मुखम् ॥

इति शैववचनादाश्रयन्तीति । तेन 'अतिघोरे संसारे अत्यन्तं क्लेशिनं मां पाहीति' प्रार्थनाव्याजेन नो मृत्युवरणमुपपत्तिपूर्वमुक्तमित्यवगन्तव्यम् । तथोक्तं मुक्तिखण्डे—

उत्पत्त्यादिविनिर्मुक्तमोङ्कारकमलासनम् ।
स्वात्मविद्याप्रदानेन सतां संसारमोचकम् ॥
दक्षिणामूर्तिदेवाख्यं जगत्संहारकारणम् ।
रुद्र यत्ते मुखं तेन दक्षिणं पाहि मामिति ॥
उक्त्वा पुनः पुनर्देवं पूजयामास भक्तितः ।
ततो देवो महादेवो दक्षिणामूर्तिरीश्वरः ॥

प्रदत्वा स्वात्मविज्ञानं तस्मै विप्राय सुव्रताः ।
तस्य संसारविच्छेदमकरोदम्बिकापतिः ॥ इति ।
(सूतसंहिता मुक्ति ४।४३-४९)

एवं च विष्णोर्मुक्तिसम्पादकत्वप्रतिपादकवचनानि मोचकज्ञान-सम्पादकशिवरिराधीषासम्पादनपराणि । तथा हि—

ॐकारस्य प्रसादेन विष्णोश्चैव प्रसादतः ।
रुद्राराधनवाञ्छा स्यात्तदाराधनतत्परः ॥
ज्ञानमानन्दमद्वैतं परं ब्रह्माधिगच्छति ।
(सूतसं० यज्ञवै० २३।१९-२० ॥)

इति सूतसंहितोपबृंहितायां—

ॐकारं रथमारुह्य विष्णुं कृत्वाऽथ सारथिम् ।
ब्रह्मलोकपदान्वेषी रुद्राराधनतत्परः ॥ अ० ना० २ ॥

इत्यमृतनादोपनिषदि तथोक्तम् । 'त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन् न योगी मामुपेष्यति' इति कौर्मे विष्णुं प्रति शिववचनम् ।

'तत्प्राप्त्यर्थं महाविष्णुः देवदेवं सनातनः' इति पराशरे ।

'उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्थाः विमुक्तये ॥ कैवल्यो० ७ ॥

विना महेश्वरादन्यः संसारभयनाशकः ।
नास्त्यतोऽत्यन्तयत्नेन पूजयस्व महेश्वरम् ॥

इति कैवल्यश्रुतिसूतसंहितावचनाभ्यां शिवव्यतिरिक्तस्य मुक्तिप्रदत्वानुपपत्तेः । यज्ञवैभवखण्डे सत्यसन्धं प्रति विष्णुवचनम्—

नाहं संसारमग्नानां साक्षात्संसारमोचकः ।
ब्रह्मादिदेवताश्चान्या नैव संसारमोचकाः ॥
शिव एव हि जन्तूनां महासंसारवर्तिनाम् ।
संसारमोचकः साक्षात् सर्वज्ञः साम्ब ईश्वरः ॥
(सूतसं० य० वै० २५।३९-४० ॥)

इति ब्रह्मगीतायां शिवं प्रस्तुत्य—

एष एव हि जन्तूनां परिज्ञानं ददाति हि ।
न विष्णुर्नाहमन्यश्च सत्यमेव मयोदितम् ॥
आदाने च तथा दाने न स्वतन्त्रो महाहरिः ।
तथैवाहं सुरश्रेष्ठाः सत्यमेव मयोदितम् ॥
स्वतन्त्रः शिव एवायं स हि संसारमोचकः ।
तं विना न मयोद्धर्तुं शक्यते संसृतेर्जनः ॥

विष्णुना च परेणापि महादेवं घृणानिधिम् ।
विना जन्तुं समुद्धर्तुं शक्यते न हि सत्तमाः ॥
दुर्विन्यायेन संसारादुद्धरामि जनानिमान् ।
न स्वातन्त्र्येण हे देवाः साक्षाद् विष्णुस्तथैव च ॥
(ब्रह्मगीता ४।७९-८३)

अतः सर्वं परित्यज्य शिवादन्यन्न दैवतम् ॥
तमेव शरणं गच्छेत् सद्योमुक्तिं यदीच्छति ।
विष्णुभक्त्या च मद्भक्त्या नास्ति नास्ति परा गतिः ॥
शम्भुभक्त्यैव सर्वेषां सत्यमेव मयोदितम् ।
शम्भुभक्तस्य देहेऽस्मिन् प्रसादो गम्यते यथा ॥
न तथा विष्णुभक्तस्य न मद्भक्तस्य देहिनः ।
तस्मान्मुमुक्षुर्मां विष्णुमपि त्यक्त्वा महेश्वरम् ।
आश्रयेत्सर्वभावेन प्रसादं कुरुते हि सः ॥
(वही ४।१२६।१३० ॥)

इति ब्रह्मवचनानि ॥ २३ ॥

अथ श्रुत्यादिप्रमाणैः शिवस्य जननाद्यभावात् जननादौ भीतिमन्तः तमेव आश्रित्य मुक्ताः, नान्यमाश्रित्य इत्युक्तम् । इदानीं शिवव्यतिरिक्तानां जनिमतां बन्धमोक्षकर्त्ता शिव एवेति कुतस्तेषां मुक्तिप्रदत्वगन्ध इति श्रुत्यादिभिरुदीरयन् कार्पण्यनिरूपणपूर्वकं गोप्तृत्ववरणं निरूपयति ।

एकोऽसि त्वं शिव जनिमतामीश्वरो बन्धमुक्त्योः
क्लेशाङ्गारावलिषु लुठतः का गतिस्त्वां विना मे ।
तस्मादस्मिन्निह पशुपते घोरजन्मप्रवाहे
स्विन्नं[1] दैन्याकरमिह भवे[2] मां भजस्व प्रपन्नम् ॥२४॥

जन्मप्राप्त प्राणियों के बन्धन एवं मोक्ष में हे शिव ! तुम्ही समर्थ हो । तुम्हारे विना दुःख रूपी अग्निराशि में लुढ़क रहे मेरा क्या सहारा है ? इसलिये हे पशुपति ! यहाँ इस दुःखद जन्मप्रवाह वाले संसार में भीग रहे दीनता की राशि, शरणागत मुझको स्वीकार करो ॥ २४ ॥

'सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते प्रसूयन्ते' इत्यथर्वशिखावाक्येन (२) सदाशिवादि । सकलचेतनानाम् ।

'यस्मात् सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम् ।
सह भूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं सम्प्रसूयते' ॥

---

१. खिन्नं–पा० । २. ०मतिभयं–पा० ।

इति परमेश्वरादुत्पत्तिः प्रतिपादिता। तथा 'सोमः पवते जनिता मतीनामिति'।

'सोमः पवते' इत्यादि ऋङ्मन्त्रैरम्बिकापतिः।
मर्त्यादीनां तु सर्वेषां जनितेत्युच्यते द्विजाः॥
मध्ये मध्येऽपि तद्वाक्ये जनितेत्यनुवर्तनम्।
लोकभ्रान्तिनिवृत्यर्थमिति ....॥
ब्रह्मविष्णु प्रभृतयो यदन्ताः सोमसम्भवाः।
अयमर्थस्तु निर्णीतो वेदेनैव यथार्थतः॥

इति शिवरहस्ये विष्णुवचनैरपि सर्वेषां जनिमत्त्वमुक्तम्। अत एव सूतसंहितायाम्—

पुरा कश्चिद्द्विजश्रेष्ठः श्रद्धया कर्म वैदिकम्।
कृत्वा प्रदग्धपापस्तु विशुद्धहृदयो भृशम्॥
भीतो जन्मविनाशाभ्यामतीव मुनिपुङ्गवाः।
क्रमेण सकलान्देवान् स्वसंसारविमोचकान्॥
मत्त्वाऽऽराध्य पुनः सर्वान् जन्मनाशवृतानिमान्।
परित्यज्य विचारेण भगवन्तं त्रिलोचनम्॥
(सू० सं० मुक्तिखण्ड ४।३२-३४)

इति शिवान्येषां देवानामुत्पत्तिविनाशावुक्तौ।

न भिन्नान् भिन्ना नौरलमुदनिधेरुद्गमयितुम्
शिला नैवोन्नेतुं प्रभवति शिलामन्तकरिपो।
जनित्वा मृत्वा वा जगति परिवर्ती सुरगणः
कथं मे संसारभ्रमणभयभाजस्तु शरणम्॥

इति सुदर्शनाचार्यैरपि तथोक्तम्। तस्मात् सदाशिवादीनां संसारिणां बन्धमोक्षविधाता शिव एव समर्थः।

मलमायादिभिः पाशैः स बध्नाति पशून्पतिः।
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः॥

इतिवचनात्।

परमशिवः परमेश्वरः स्वतन्त्रो यदि कुरुते मनुजस्य वेदनं हि तत्।
परमपदं विमलं प्रयाति मर्त्यो यदि कुरुते न शिवः प्रयाति बन्धम्॥
(ब्रह्मगीता ६।४६॥)

इति ब्रह्मगीतावचनाच्च। 'जन्मान्तरमपि'।

इष्टापूर्तविमोहितो यदि शिवं साम्बं न चाभ्यर्चयेद्
योनीनां शतकोटिमेति विविधान् दुःखी पुनर्निःसरेत्।

निर्दारद्रविणो निरन्नजठरो निक्षेत्रदासीपशुः
भ्रान्तश्चित्तविपर्ययेण चरति क्ष्मामण्डलं काकवत् ॥

इति क्लेशाङ्गारपरामनुभवतो मम त्वां विना नान्यागतिः ।

शिवचरणस्मरणेन पूजया च स्वकृततमसः परिमुच्यते हि जन्तुः ।
न हि मरणप्रभवप्रणाशहेतुशिवचरणस्मरणादृतेऽस्ति किञ्चिद् ॥
(ब्रह्मगीता ६।४९)

इति ब्रह्मगीतोक्तेः । शिवाश्रितानामभीष्टार्थलाभः ।

आरोग्यं परमायुरुत्तममतिः सौभाग्यवृद्धिर्यशः
श्रेयोरूपमुदारता रतिसुखं सन्तानवृद्धिर्महः ।
कान्तिः शौर्यमपारशत्रुविजयो विद्याऽपि सम्प्राप्यते
नित्यं शङ्करपूजया शिवमहाविद्यावतां सर्वथा ।

इति शिवरहस्ये उक्तम् ।

विष्णुब्रह्मादयो देवा मर्त्याश्च पशवः स्मृताः ।
त्वत्पाशमोचको देवः शिवः पशुपतिः स्मृतः ॥

इत्याह—'पशुपते' इति ।

तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् शिवमेव समाश्रयेत् ।
तमाश्रित्यैव देवानामपि मुक्तिर्न चान्यथा ॥

इति वायवीयवचनात् । देवानां विष्णवादीनां ।

तेषां पशूनां पाशो यः स संसारस्तथा सति ।
तन्मोचको महादेवादवरो नास्ति सर्वथा ॥

इतिवचनात् । क्लेशाङ्गारावलिष्विव अस्मिन् घोरजन्मप्रवाहेऽखिलम्—

स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ।
मोक्षार्थमतियत्नेन शरणं व्रज शङ्करम् ॥

इत्याह—'प्रपन्नमिति' ।

संसारतरणोपायः शङ्करस्यैव पूजनम् ।
यतः स शङ्करः साम्बो भक्तसंसारतारकः ॥

इति वचनादाह—'मां भजस्वेति' ॥ २४ ॥

एवमुक्तप्रकारेण 'परमशिवायात्मार्पणं कृतवन्तं मां मायादिपाशनिवृत्तिकारिण्या ब्रह्मविद्यया योजय' इति परमेश्वरं प्रार्थयन् 'यो देवानामिति' प्रतिपन्नमर्थमाह—

यो देवानां प्रथममशुभद्रावको भक्तिभाजाम्
पूर्वं विश्वाधिक[1]शतधृतिं जायमानं महर्षिः।
दृष्ट्याऽपश्यत्[2] सकलजगतीसृष्टिसामर्थ्यदात्र्या
स त्वं ग्रन्थिप्रविलयकृते विद्यया योजयास्मान् ॥२५॥

भक्तों के अमङ्गल के नाशक जिस क्रान्तदर्शी महात्मा ने पहले उत्पन्न हो रहे, देवताओं में आदिभूत (हिरण्यगर्भ आदि तथा) विश्वोत्तीर्ण (सदाशिव आदि) को सम्पूर्ण संसार की रचना (आदि) की शक्ति देने वाली दृष्टि से देखा वही तुम (अज्ञान की) ग्रन्थि का विनाश करने के लिए हमें विद्या से युक्त करो ॥ २५ ॥

'यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु ॥
(श्वेता० ३।४)'

यो विश्वाधिकः पशुपाशविलक्षणत्वात्। भक्त्या सम्यगुपासित इति भक्तिमतामशुभद्रावको रुद्र इत्यर्थः।

'अशुभक्षयकर्त्तारं फलमुक्तिप्रदायिनम्।
यदि योन्यां प्रमुञ्चामि तं प्रपद्ये महेश्वरम् ॥" इति श्रुतेः।
(गर्भोप० ९)

देवानां विष्णवादीनां पुरः प्रथममाद्यं आहिरण्यगर्भं स्वस्मिन् जायमानो महर्षिः सकलमन्त्रद्रष्टा परमेश्वरो निखिलभुवनसृष्टिसार्थं सम्पादिकया अनुग्रहदृष्ट्याऽपश्यत् स त्वं संसारपाशबन्धस्य अशेषं नाशकारिण्या विद्याऽस्मान् योजयेति प्रार्थना "यः सर्वासां देवतानां च हेतुः, यो वा विष्णोरधिको वै महर्षिः। ब्रह्माणं यः पश्यते जायमानं रुद्रः सोऽस्मान् सन्मतौ संयुनक्तु' इति भविष्येऽपि तथोक्तम्। अत्र शतधृतिरिति पदं सदाशिवादीनामुपलक्षकम्। सृष्टिरिति पञ्चकृत्योपलक्षणम द्रष्टव्यम्। शिवपरतन्त्रत्वात् तेषाम्। तथोक्तम्—

त्वत्तः किल जायन्ते प्रतिकलां ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्राः।
तेष्वपकृष्टेषु विभो न स्युस्तदधस्तनाः किमपकृष्टाः ॥'

इति शिवमहिमकलिकायाम् दीक्षितैः ॥ २५ ॥

अथ शिवविषयिण्येव विद्या सैव संसारनिवर्तिका नान्या इत्येतदर्थमकथयत्—'यदा चर्मवदिति' श्वेताश्वतर मन्त्रसिद्ध्यर्थमाह—

---

१. पश्यन् इति पाठान्तरम्। २. विश्वाधिक !–पा०।

यद्याकाशं शुभद ! मनुजाश्चर्मवद्वेष्टयेयुः
दुःखस्यान्तं [1]कतिरिपुरुषस्त्वामविज्ञाय चेति[2] ।
विज्ञानं च त्वयि शिव ! ऋते त्वत्प्रसादान्न लभ्यं
तद्दुःखार्तः कमिह शरणं यामि देवं त्वदन्यम् ॥२६॥

हे शुभप्रदाता, यदि मनुष्य आकाश को चमड़े की भाँति वेष्टित कर लें, और कुछ शत्रुत्व के रोष वाले तुम को विना जाने भी दुःख का अन्त स्वीकार करलें, किन्तु हे शिव ! तुम्हारी कृपा के अतिरिक्त तुम्हारे विषय में ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता । फिर क्लेश में पड़ा मैं तुम से भिन्न किस देवता की शरण में जाऊँ ? ॥ २६ ॥

'ईशं तं ज्ञात्वा अमृता भवन्ति ।' 'ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति' (श्वेता० ४।१४) इत्यादि श्रुतिभि'रीश्वराद् ज्ञानम् अन्विच्छेदिति' भागवत' (२।१।) स्मृतेश्च स्वज्ञानपूर्वकमोक्षप्रदत्वमेव शिवस्य शुभदत्वम् । तज्ज्ञानम् ईश्वरप्रसादाभावे न भवत्येव असंभवाद् इति दृष्टान्तमाह—'यद्येति । तथा प्रसादपूर्वकशिवज्ञानादेव मुक्तिरित्यर्थः ।

प्रसादेन विना ज्ञानं ये जानन्ति सुरर्षभाः ।
ते जानन्ति विना घ्राणं गन्धं हस्तेन केवलम् ॥
'प्रसादेन विना ज्ञातुं शक्यते न हि जन्तुभिः ॥'

इति स्कान्दशैववचनाभ्यामित्याह—"ऋते" इति ।

मूर्तिः परतरा ध्येया विमुक्त्यर्थं मुमुक्षुभिः ।
मूर्तिध्यानं विना विद्या परा नैव हि सिध्यति ॥
ज्ञानावलम्बनभ्रान्त्या मनुष्या मन्दबुद्धयः ।
मृत्युपेक्षां करिष्यन्ति ज्ञानं तेषां न जायते ॥

इति पराशर-सूतसंहितादिषु बहुधापारमेश्वरपरतरमूर्तिध्यानादेव ज्ञान-लाभो नान्यथेत्युक्तम् । तस्मात् संसारपीडितः सकलसंसारसार-सागरकर्णधारमीश्वरं त्वां विहायान्यं कं शरणं यामीत्याह—'तदिति ।' तथोक्तम्—

विद्याप्रदं वरद ! विश्वसिमः कमन्यं विद्याधिपौ भवति विश्वगुरौ प्रतीते ।
सर्वज्ञनामनि समुन्मिषदिन्दुचूडे सन्ध्यार्द्धविग्रहसमाकलितात्मविद्ये ॥

इत्यार्याप्पयदीक्षितैः ॥ २६ ॥

अथ 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि (बृहदा० ३।९।२६) 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति (कठ १।२।१५) इत्यादिवेदा-न्तानामर्थनिर्णयाय ।

---

१. तदपि–पा० ।   २. नैति–पा० ।

वेदान्तार्थस्तु सर्वेषां नाना भाति न चैकधा ।
अतस्तेन कथं ब्रह्म जानात्वल्पमतिः पुमान् ।

इति स्वल्पमतीनां तज्ज्ञानाभावात् ।

शास्त्रमापाततो भाति मुने बहुमुखं नृणाम् ।
निरूपिते तु न्यायेन विभात्येकमुखं पुनः ॥

इति पराशरोक्त्या उपक्रमादितात्पर्यग्राहकन्यायैर्वेदान्तार्थनिर्णयः स्यात् । अथवा

शिवैक्यरूपं वेदान्तैः समस्तैः प्रतिपाद्यते ।
वेदान्तैरेव तज्ज्ञानं जायते नापरैः सदा ॥

इत्यादि वेदान्तार्थनिरूपकपुराणैर्जगत्कारणे ब्रह्मणि निश्चिते, 'तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्' इतिव्याससूत्रात् (ब्र० सू० १।१।७) तज्ज्ञानवतां मोक्ष उपदिश्यत इति ईश्वरप्रपदनं प्रार्थनप्रयासेन इत्यत आह—

किं गूढार्थैरकृतकवचोगुम्फनैः किं पुराणैः
तन्त्राद्यैर्वा पुरुषमतिभिर्दुर्निरूप्यैकमत्यैः ।
किं वा शास्त्रैरफलकलहोल्लासमात्रप्रधानै-
र्विद्या विद्येश्वरकृतधियां केवलं त्वत्प्रसादात् ॥२७॥

गम्भीर अर्थ वाली अपौरुषेय वाणी (उपनिषद् आदि) की योजना से क्या लाभ ? पुराणो से क्या और पुरुष की बुद्धि से कठिनाई से निरूपणीय विषय वाले तन्त्र आदि ग्रन्थों से क्या लाभ ? निष्फल वाद-विवाद को ही मुख्य-रूप से उकसाने वाले शास्त्रों से भी क्या प्रयोजन ? (अर्थात् इनसे ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता ।) हे विद्या के स्वामी, परिष्कृत बुद्धि वाले लोगों को विद्या तो केवल तुम्हारी कृपा से ही प्राप्य है ॥ २७ ॥

अकृतकवचांसि वेदान्तवाक्यानि । 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' (छा० ६।२।१) 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् (ऐतरेय० १।१।१) 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' 'प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत्' 'एको ह वै नारायण आसीत्' (महोप० १।१) 'अहमेकः प्रथममासम्' (अथर्व-शिर १) इत्यादीनि विरुद्धानेकदेवतावाचकशब्दयोगेन निर्णेतुमशक्य-त्वाद् गूढार्थैरेतत्समुदायैः किम् ।

पुराणैरेव वेदार्थो विस्पष्टो जायते खलु ।
वेदविज्ञानलाभाय वेदानामुपबृंहणम् ॥
पुराणमभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो विगतस्पृहः ।

इति सौरसंहितादिपुराणैर्वेदार्थनिर्णयस्य आदिष्टाद् आह, किं पुराणैरिति नानादेवतोत्कर्षापकर्षनिरूपणाद् गूढार्थास्तैर्वा किम्। तान्यपि वेदवचनादिसिद्धत्वात्। तात्पर्यं दुर्ग्रहमिति भावः। व्यासस्य तत्कर्तृत्ववचनं पुराणसंग्रहकर्तृत्वपरम्।

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनामहं निःश्रेयसाय हि।
इतिहासं पुराणं च कृतवान् संग्रहेण तु ॥

इति पुण्डरीकपुरमाहात्म्ये व्यासस्यैव वचनात्। 'यो वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै (श्वेता० ६।१८)' 'तस्मै वेदान् पुराणानि दत्तवानग्रजन्मनः' इति। श्रुतिस्मृतिभ्यामाद्यकृतयुगे ब्रह्माणमुत्पाद्य जगत्सृष्टिप्रकारपरिज्ञानार्थं तस्मै वेदेन सह पुराणमप्युपदिष्टवान् परमेश्वरः। तस्यैव शतकोटिग्रन्थस्य पुराणस्याविभक्तपाद्मादिभेदस्य त्रेतायाम् अष्टादशऋषिभिरष्टादशकोक्त्या संक्षेपः कृतः। तस्यैव पुनर्द्वापरान्ते वेदव्यासैः संग्रहः कृतः। मत्स्यपुराणे 'एवं पुराणमेवासीच्छतकोटिप्रविस्तरम्' इति आरभ्य 'तदर्थोऽत्र चतुर्लक्ष्या संक्षेपेण निवेशित'—इत्यन्तेन तथा प्रतिपादनाच्च।

'व्यस्तवेदतया लोके वेदव्यास इति श्रुतः'।
'पुराणमपि संक्षिप्तं चतुर्लक्षप्रमाणतः'।

इति वायवीय संहितायां च। एवं चेत्

शैवो यः परमो धर्मः श्रेष्ठानुष्ठानशब्दितः।
इतिहासपुराणाभ्यां कथञ्चिदुपबृंहितः ॥
शैवागमैस्तु स पुनः सहाङ्गोपाङ्गविस्तरः।
तत्संस्काराधिकारैश्च सम्यगेवोपबृंहितः ॥

इति शिवपुराणवचनाच्छिवागमैर्वेदान्ततात्पर्यनिर्णयोऽवश्यं भवत्येव। तथोक्तं सुदर्शनाचार्यैः।

ध्यानं यथा भवति तद्विषयो यथास्वं यादृग्गुणश्च भगवन्नधिकारिवर्गः।
सर्वाणि तानि भवदागमसंहिताभिः कल्पैरिवाध्वरविधेरुपपादितानि ॥

इत्यत आह—'तन्त्राद्यैर्वेति'। कामिकादिभिरिति भावः। आदिपदेन मनु-याज्ञवल्क्य-बोधायनादिप्रणीतशास्त्रैरित्यर्थः। पुरुषमतिभिर्दुनिरूप्यैकमत्यत्वं सर्वत्र द्रष्टव्यम्।

अथ शास्त्रमापाततो भाति।
आम्नायान्तमहावाक्यसूक्ष्मतात्पर्यनिर्णयः ।
उपक्रमादिभिर्लिङ्गैः षड्भिः साध्यो द्विजोत्तम ॥

इति पराशरोक्तरीत्या उपक्रमादिसन्दर्भितपदवाक्यप्रमाणशास्त्रैर्वेदान्तार्थनिर्णयः किं न स्यादित्यत आह--'किं वेति'। वृथाकलहपरम्परासम्पादनमन्तरेण नान्यत्प्रयोजनम्, अत उक्तम्-'मात्रमिति'।

पुराणं भारतं वेदाः शास्त्राणि सुमहान्ति च।
आयुषः क्षपणायैव धर्मोऽल्पो ग्रन्थविस्तरः॥
पुत्रदारादिसंसारः पुंसां संमूढचेतसाम्।
विदुषां शास्त्रसंसारः सद्योगाभ्यासविघ्नकृत्॥

इति शिवधर्मवचनादित्यर्थः।

तस्माद्—विज्ञायाक्षरतन्मात्रं जीवितं चापि वै बलम्।
विहाय शास्त्रजालानि पारलौकिकमाचरेत्॥

इति शिवधर्मवचनैरल्पप्रयोजकत्वायुर्नाशकरत्व-योगाभ्यासविघातकत्वाच्च शास्त्राणां परित्यागं कृत्वा पारलौकिकं शिवज्ञानमाचरेदित्युक्तम्।

तस्मात् सः पण्डितः शक्तः स तपस्वी जितेन्द्रियः।
यः शिवज्ञानसद्भावमालोचयितुमुद्यतः॥

इति तादृशस्य प्रशंसाश्रवणात्। सनत्कुमारे—'विमोहनार्थैरितरैश्च शास्त्रै'रिति शास्त्राणां विमोहकत्वमुक्तम्। तस्मान्न तैरिष्टसिद्धिरित्यर्थः। तर्हि 'ईशं तं ज्ञात्वा अमृता भवन्ति, (श्वेता० ३।७) इति शिवज्ञानं मुक्तिसम्पादकम् इति निर्धार्य 'सर्वशाखासु वस्त्वेकं शिवाख्यं वस्तु चिद्घनम्' इति गुणोपसंहारन्यायेन सर्वत्रोपनिषत्सु देवतांतरवाचकशब्दोपात्तं तत्त्वं ततो नास्त्यधिकमिति निर्णयदर्शनात्।

प्राधान्येन महादेवः पुराणैरखिलैरपि।
तात्पर्येणाम्बिकानाथः सर्वज्ञः प्रतिपाद्यते॥
सवेदाङ्गाः सोपनिषदः पुराणाध्यात्मनिर्णयाः।
यदत्र परमं गुह्यं स वै देवो महेश्वरः॥
वेदैः पुराणैः शास्त्रैश्च तथोपनिषदैरपि।
आगमैर्विविधैः शम्भुर्ज्ञातव्यो नात्रसंशयः॥

इति ब्रह्माण्डकेदारखण्डादिवचनैः। 'वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः।' इति कथं सिद्धतया व्यवहृतिरिति चेदियं विद्या परमेश्वरप्रसादवतां कृतधियां इत्याह—'त्वत्प्रसादादिति'।

देवदेवप्रसादस्तु येषामस्तीह पुष्कलः।
जानन्त्येतेऽपरोक्षार्थं नैवान्ये मायया हताः॥

इति पुण्डरीकपुरमाहात्म्ये ।

शिवेनानुगृहीता ये सच्चिदानन्दमूर्तिना ।
तः शिवो ज्ञायते सम्यगन्यैर्न ज्ञायते ध्रुवम् ॥

इति शिवरहस्ये ।

महादेवप्रसादेन खलु वेदार्थविद् भवेत् ।
नेतरस्य ततः शंभुं सादरं नित्यमर्चयेत् ॥
तच्च शंभोः प्रसादेन गुरोश्चैव प्रसादतः ।
तथा वेदान्तवाक्यानां तात्पर्यस्य विचारणात् ॥
जायते तच्छिवज्ञानं नान्यथा सत्यमीरितम् ।
प्रसादे शाम्भवे सिद्धे ब्राह्मणस्यान्त्यजस्य वा ॥
जायते शांभवं ज्ञानं नान्यथा जन्मकोटिभिः ।

इति भविष्य व्यासवचनैः श्रीसाम्बशिव प्रसादादेव मोक्षजनकशिवज्ञानलाभो नान्यथेति सिद्धम् ॥ २७ ॥

एवं बहुधा परमशिवं शरणं गतो रक्षणीयोऽहमिति पुनरपि श्लोकपञ्चकेन परमेश्वरं प्रार्थयते ।

पापिष्ठोऽहं विषयचपलः सन्ततद्रोहशाली
कार्पण्यैकस्थिरनिवसतिः पुण्यगन्धानभिज्ञः ।
यद्यप्येवं तदपि शरणं[1] त्वत्पदाब्जं प्रपन्नं
नैनं दीनं स्मरहर तवोपेक्षितुं नाथ युक्तम् ॥२८॥

मैं महापापी हूँ, विषयों के प्रति चञ्चल हूँ, निरन्तर द्रोह मेरा स्वभाव है, कृपणता में ही मेरा स्थायी आवास है, और पवित्रता की गन्ध से भी अपरिचित हूँ। यद्यपि मैं ऐसा हूँ तथापि तुम्हारे चरणकमल की शरण में पहुँचे इस दीन की उपेक्षा करना, हे स्वामिन्, कामदमन ! तुमको उचित नहीं है ॥ २८ ॥

पापिनां मध्ये श्रेष्ठः । युक्तायुक्तविचारमन्तरेण सततं विषयलोलुपः । एवं च विहितकार्याकरणाद् द्रोही । धर्माभावात् कार्पण्यैकसदनम् । पुण्यज्ञानहीनः । यद्यप्येतादृशस्तथापि स्मरहरेति शिवनामस्मरणाद्धन्य एव ।

विना कामेन च कथं पापमाचरते जनः ।
तस्मात् कामो मया दग्धः सर्वेषां शान्तिहेतवे ॥

इति केदारखण्डोक्तशिववचनात् सकलपातकनिदानस्मरहरप्रयुक्तत्वात् । तथोक्तम्—

---

१. शरण–पा० ।

'यन्नाममात्रोच्चरणेन सद्यो धन्या भवन्त्येव हि पापिनोऽपि'।

'यः शङ्करैकशरणो यः शिवैकार्चनप्रियः।
स एव सर्वधर्माणामाश्रयो भवति ध्रुवम्॥
बहुनात्र किमुक्तेन यस्य भक्तिः शिवे दृढा।
महापापोपपापौघकोटिग्रस्तो विमुच्यते॥

इति शिवरहस्यवचनैर्नामोच्चारणदृढ़भक्तिप्रपत्तिभिर्निष्पापः सकलधर्माणाम् आश्रयं माम्—

अनन्यशरणो यस्तु सर्वधर्मान् विहाय माम्।
योऽर्चयिष्यति पुण्यात्मा स एव मम सम्मतः॥

इति शिववचनात् स्वशरणमुपेत्यार्चकं स्वसम्मतं दीनमुपेक्षितुमयुक्तमिति प्रार्थनां करोतीत्यर्थः॥ २८॥

आलोच्यैवं यदि मयि भवान्नाथ दोषाननन्ता-
नस्मत्पादाश्रयणपदवीं नार्हसीतीति चेन्माम्[१]।
अद्यैवेमं शरणविरहाद् विद्धि भीत्यैव नष्टं
ग्रामो गृह्णात्यहिततनयं किन्नु मात्रा निरस्तम्॥२९॥

हे स्वामिन्! यदि इस प्रकार से आपने मेरे अगणित दोषों की आलोचना करके मेरे विषय में यह निर्णय लिया कि "तुम मेरे चरणों के अवलम्ब के मार्ग के योग्य नहीं हो" तो शरण के अभाव में इसे आज ही डर कर विनष्ट हुआ समझिये। क्या माता के द्वारा त्यागे गये दुष्ट पुत्र को ग्राम के लोग स्वीकार करेंगे?॥ २९॥

हे नाथ स्वामिन् यदि त्वच्छरणं गते मयि दोषान् भृङ्गिगणितान् अगणितान् जीवसम्बन्धिनो दोषानालोच्य अस्मदाश्रयं कर्त्तुं त्वं योग्यो न भवसि इति यदि मां दूरी कुर्याः, तदा रक्षकाभावादद्यैव भीत्या नष्टं मां विजानीहि। अस्मिन्नर्थे दृष्टान्तमाह—'मात्रा दूरीकृतमहितसुतं किमन्यो गृह्णाति इति, न कोऽप्यङ्गीकुर्यात्। सर्वैकमत्यद्योतनार्थमेकपदेनोक्तम्—'ग्राम' इति। 'यस्तु स्वयं निमग्नः कथमुद्धरेत्परानिति' शिवव्यतिरिक्ताः सर्वे संसारिणः संसारिणं कथं रक्षेयुः। तदुक्तम्—'त्वामेवैकमिति प्राक्'।

अतः—अभयप्रद विश्वात्मन् वरदामरपूजित।
विष्णुपूजितपादाब्ज प्रसीद गिरिजापते॥

---

१. नार्हतीति क्षिपेन्माम्—पा०।

इति वचनाच्छरणागते मयि प्रसन्नो भवेति प्रार्थनां करोतीत्यर्थः ॥ २९ ॥

अथ परमेश्वराय स्वात्मार्पणं कृतवतः प्राग्दग्धवासनया कदाचित्प्राप्तापराधे सहनमेव युक्तम्। 'नमः समानाय आषाढाय सहमानायेति' श्रुतेः सहनस्वभावः शिवः। स्वभक्तापराधान् सहस्वेति। सुतमपराधिनमपि कृताशिक्षं जनकः पालयतीश तथेति शिवरहस्यवचनात् मन्मनोनिग्रहं वा कुर्याः। न तु निरतिशयदुःखेन गत्यन्तराभावात् कृत्यं मदीयं गिरिश त्वदीयं भक्तं पुनर्मां परिपालयाशिवति स्वात्मनिवेदनपूर्वकं शिव तव पदनलिनयुगलमाश्रितस्य त्यागोऽयुक्त इत्याह—

क्षन्तव्यं वा निखिलमपि मे भूतभावि व्यलीकं
दुर्व्यापारप्रवणमथवा शिक्षणीयं मनो मे।
न त्वेवार्त्या निरतिशयया त्वत्पदाब्जं प्रपन्नं
त्वद्विन्यस्ताखिलभरममुं युक्तमीश प्रहातुम् ॥३०॥

अतः या तो भूत एवं भविष्य के मेरे समस्त दोषों को क्षमा कर दो या दुष्ट कर्मों में निपुण मेरे मन को सुशिक्षित कर दो। अतीव आर्तभाव से तुम्हारे चरण कमलों की शरण में आये और तुम पर ही अपना सारा भार डाल देने वाले इस व्यक्ति को छोड़ देना हे नाथ ! उचित नहीं ॥ ३० ॥

अथ स्वात्मार्पणं विधाय तदधीन इति निश्चित्य 'स्थितं मामुपेक्षितुं स्वामिन्ते न युक्तमिति' विज्ञापनप्रकारस्तावदास्ताम्। यः कोऽपि निजदुष्कृतिवशादतिदुःखमनुभवन् दीन आपन्निमग्नो दृष्टो यदि येनकेनचित् तदा तत्स्वरूपपीडापरिज्ञानतद्रक्षणसामर्थ्याभावे केवलदयामात्रेण तदवनं कर्त्तुं न कोऽपि शक्तः। हे शिव त्वं सर्वशक्तिसम्पन्नः सन् आपन्निमग्नं कुतो न गणयसीत्याह—

सर्वज्ञस्त्वं निरवधिकृपासागरः पूर्णशक्तिः
कस्मादेनं गणयसि न मामापदब्धौ निमग्नम्।
एकं पापात्मकमपि रुजा सर्वतोऽत्यन्तदीनं
जन्तुं यद्युद्धरसि शिव ! कस्तावतातिप्रसङ्गः ॥३१॥

तुम सब कुछ जानते हो, अपार कृपा के सिन्धु हो, शक्ति सम्पन्न हो, फिर विपत्ति-सिन्धु में डूबे इस मुझ पर ध्यान क्यों नहीं देते ? पापी होने पर भी रोग से सर्वतः पीड़ित और असहाय एक जीव का यदि उद्धार कर देते हो तो हे शिव ! तुम्हारे लिये अनुचित क्या होगा ? ॥ ३१ ॥

"यः सर्वज्ञः सर्ववित्'। (मुण्डक १।१।९।।)

यद्यथावस्थितं वस्तु तत्तथैव सदाशिवः।
अयत्नेनैव जानाति तस्मात् सर्वज्ञ उच्यते ।।

इति श्रुतिस्मृतिसिद्धः सर्वज्ञोऽसि, अतो मां जानास्येव तथापि रक्षणकृपाभावाद् इत्यपि न। निरुपधिकरुणापारावारस्त्वमतो हर हर सुरवर दुःखमिति । अशक्तोऽस्मीत्यपि न।

"पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते" (श्वेताश्व ६।८) "स्वशक्तिसमायोगाच्छक्तिमानुच्यते शिवः" इति श्रुत्यादिभिः सर्वशक्तिसम्पन्नः शिवः। एवं सर्वज्ञत्वादनितरसाधारणदीनरक्षणोपयुक्तगुणनिधिः सन्नपि किं मामुपेक्षसे। किञ्च—

शिवस्य परिपूर्णस्य परानुग्रहमन्तरा।
न किञ्चिदपि कर्त्तव्यमिति साधुविनिश्चितम्।

इति शैववचनात् परानुग्रहार्थाः शिवस्य सर्वे व्यवहाराः। तस्माद्

'भव भवदीयानस्माननिशं कुरु गतदुःखानतिदुःखान्'।

'गिरिश महापज्जलधेरस्मानुद्धर धीरकृपाजलधे' इति वचनादाह— 'आपदिति।' 'सोऽनादित्वात् कर्मण इह भोगमृते न याति संसिद्धिमिति' तत्त्वप्रकाशोक्त्या 'अवश्यमनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभमिति' कर्मफलभोगरूपः संसारो दुःखरूपः। 'दुःखमेव हि सर्वोऽपि संसार इति निश्चितमिति' शैववचनात्। सर्वेप्येवमेव प्रार्थनां कुर्युरित्यतिप्रसङ्गः स्यादित्यत आह—'एकमिति'। एतादृशविशेषणयुक्तोऽहमेक एवेति भावः।। ३२।।

अथ यद्यपि परमेश्वरं प्रति सर्वेप्यार्त्तमगतिं मामुद्धरेति प्रार्थनां कुर्युरेव, तदपेक्षया प्रार्थनाप्रकारविशेषमन्यं न च जाने तथापि नित्यसर्वज्ञ इति वस्तुतत्त्वविचारपूर्वकं मद्रक्षणं विधेयमिति परमशिवं प्रार्थयन् अतिप्रसङ्गं वारयति—

अत्यन्तार्त्तिव्यथितमगतिं देव मामुद्धरेति
क्षुण्णो मार्गस्तव शिव पुरा केन वा नाथ नायम्[1]।
कामालम्बे बत तदधिकां प्रार्थनारीतिमन्यां
त्रायस्वैनं सपदि दयया[2] वस्तुतत्त्वं[3] विचिन्त्य ।।३२।।

मुझ घोर दुःख से पीडित, असहाय का, हे स्वामिन्! उद्धार करो। हे नाथ! हे शिव! (मैं नहीं जानता) कि किसी ने तुम्हारे इस मार्ग का

१. वानाथनाथ—पा०। २. कृपया—पा०। ३. वस्तुतस्त्वं—पा०।

अनुसरण पहले किया है अथवा नहीं। अब मैं उससे बढ़कर किस दूसरी प्रार्थना की पद्धति को अपनाऊँ? तुम शीघ्र ही वास्तविकता का विचार करके कृपया इसकी रक्षा करो ॥ ३२ ॥

अथानादितयैतावत्कालपर्यन्तं 'भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि माययेति' (गीता १८।६१) वचनाद् 'बहुविधानेकशरीरप्रवेशनिर्गम-व्यापारपरिभ्रमणपरिश्रान्तं मां मोचयेति परमेश्वरं प्रार्थयते—

एतावन्तं भ्रमणनिचयं प्रापितोऽयं वराकः
श्रान्तः स्वामिन्नगतिरधुना मोचनीयस्त्वयाऽहम् ।
कृत्याकृत्यव्यपगतमतिर्दीनशाखामृगोऽयं
सन्ताड्यैनं दशनविवृतिं पश्यतस्ते फलं किम् ॥३३॥

यह बेचारा (मैं) इतने अधिक (जन्म-मरण के) चक्रसमूहों को प्राप्त कराया गया हूँ, बहुत थक गया हूँ, चल नहीं सकता (अथवा कोई दूसरा अवलम्ब नहीं है।) अतः हे स्वामिन्! अब तुम्हे मुझको मुक्त कर देना चाहिये। यह (मैं) कर्त्तव्याकर्त्तव्य को न जानने वाला दीन वानर हूँ, इसकी पिटायी करके उसके फैले हुये दाँतो को देखने से तुमको क्या लाभ होगा ॥३३॥

यथा तैलकारस्तैलयन्त्रबद्धं चिरपरिभ्रमणश्रान्तमुक्षाणं मोचयेत्तथा मां मोचयेति भावः। अन्यथा किं ते फलमिति आह—'कृत्याकृत्येति'।

'शिवमिच्छन् मनुष्याणां तस्माद्देवः शिवः स्मृतः।'

इत्येतादृशस्य हे शिव ते करहितं मां संताड्य मद्दशनविवराव-लोकनमनुचितमिति भावः ॥ ३३ ॥

अथात्यन्तसंसारदुःखमसहमानोऽत्यन्तखेदेन कार्पण्यं सूचयन् परमेश्वरमुपालभते—

माता तातः सुत इति समाबध्य मां मोहपाशै-
रापात्यैवं भवजलनिधौ हा[1] ! किमीश त्वयाप्तम् ।
एतावन्तं समयमियतीमार्तिमापादितेऽस्मिन्
कल्याणी ते किमिति न कृपा कापि मे भाग्यरेखा ॥३४॥

माता, पिता, पुत्र इन मोह पाशों से मुझे बाँधकर और इस प्रकार से संसारसिन्धु में गिरा कर हाय नाथ! तुम्हें क्या मिल गया? इस व्यक्ति पर इतने समय तक इतना दुःख देने के बाद भी इस पर तुम्हारी कल्याण करने वाली कृपा क्यों न हुई, क्या मेरा कल्याण करने वाली कोई भाग्य रेखा नहीं ॥ ३४ ॥

१. वा-पा० ।

'मायापाशेन बध्नामि पशूनेतान् महेश्वरि' (सूतसं० मुक्तिखण्ड ४।१०) 'माता पिता गुरुजनः स्वजनो ममेति' च पाद्मादिवचनात् मोहपाशेन बध्वा जननमरणसंसारे मां निक्षिप्य हे परमेश्वर ! त्वया किमाप्तम् । किं चैतावत्कालमेतावतीमार्तिमापादितेऽपि कल्याणी परमविश्रान्तिप्रदा तव किमिति कृपा नास्ति । मम वा कापि नास्ति वा भाग्यरेखा । हा इति खेदे ॥ ३४ ॥

प्रकारान्तरेणाप्युपालभते—

भुङ्क्षे गुप्तं बत सुखनिधिं तात साधारणं त्वं
भिक्षावृत्तिं परममभिनयन्मायया मां विभज्य ।
मर्यादायाः सकलजगतां नायकः स्थापकस्त्वं
युक्तं किं तद् वद विभजनं योजयस्वात्मना माम् ॥३५॥

हे पिता ! अपनी माया से मुझे अलग करके, भिक्षाटन का घोर अभिनय करते हुये तुम सर्वजन भोग्य आनन्द राशि का अकेले ही चुपके-चुपके भोग करते हो । तुम तो सम्पूर्ण विश्व की मर्यादा के उन्नायक तथा प्रवर्तक हो, बतलाओ, क्या हमें अलग करना तुम्हारे लिये उचित है ? मुझे शीघ्र ही अपने साथ मिलाओ ॥ ३५ ॥

'स एको ब्रह्मण आनन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्येति' ब्रह्मानन्दः साधारणः । पुत्रसाधारणं पितृजन्यं तथाऽऽनन्दोऽपीति सूचयति— 'तातेति' । 'न सुता वयमपि तव किं शम्भो जनकः स भवानस्माक–' मितिवचनात । एतादृशं सुखनिधिं निरवधिकत्वान्निर्धित्वोक्तिः । त्वमेक एव भिक्षावृत्तिं प्रकटयन् मायया सामर्थ्येन मां विभज्य स्ववैलक्षण्यमापद्याह 'पराभिध्यानाच्चातिरोहितमिति' (ब्र० सू० ३।२।५) व्याससूत्रात् । 'गुप्तं भुंक्षे ।' नैतद् युक्तमित्याह—'सकलेति' । जगदीश्वरः जगन्मर्यादास्थापकश्च । एतादृशस्य तवेदं विभजनं युक्तं किम् । 'तस्मान्निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ।' 'मुक्तः शिवसमो भवेदि'त्यादिप्रमाणसिद्धनिजसमानधर्मवन्तं मां कुर्वित्यर्थः । 'ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ।' (ब्र०, सू० ४।४।५) 'मम साधर्म्यमागताः' (गीता ४।१०) इत्यादिमानसिद्धशिवसाधर्म्यं मुक्तानामस्तु ॥ ३५ ॥

एवमनेकप्रकारेण संसारात् मामुद्धरेति परशिवप्रपदनं विधाय 'शरणं भव शरणं भव करुणाब्धे । गिरिश महापज्जलधेरस्मानुद्धर धीरकृपाजलध' इत्यनेकशः प्रार्थितोऽपि यदि नाङ्गीकुरुषे तदैवं वास्त्वित्याह—

न त्वा जन्मप्रचल[1]-जलधेरुद्धरामीति चेद्धी-
रास्तां तन्मे भवतु च जनिर्यत्र कुत्राऽपि जातौ ।
त्वद्भक्तानामनितरसुखैः[2] पादधूलीकिशोरै-
रारब्धं मे भवतु भगवन्भावि सर्वं शरीरम् ॥३६॥

यदि तुम्हारा विचार है कि 'जन्मों के चञ्चल सिन्धु से तुम्हारा उद्धार नहीं करूँगा, तो वैसा ही हो, और मेरा जन्म भी चाहे जहाँ जिस किसी भी योनि में हो। हे भगवन् (केवल इतना चाहता हूँ कि) अन्यों से सुख न चाहने वाले तुम्हारे भक्तों के चरण के धूलिकणों से ही मेरे भावी सभी शरीरों का निर्माण हो ॥ ३६ ॥

हे शिव ! मुक्तिदानेन संसारात् मामुद्धर्तुं यदि न बुद्धिस्तव, तर्ह्यस्तु जनिर्यत्र क्वापि ।

सोऽश्नुते सकलान्कामानक्रमेण सुरर्षभाः ।
विदित-ब्रह्म-रूपेण ....॥

(सूत० सं० ब्रह्मगीता ३।३२)

इति सूतसंहिता-वचनोपबृंहितेन–'सोऽश्नुते सकलान् कामान्' 'सह ब्राह्मणः विपश्चितः' इति श्रुत्या सुखनिधि-भोजने मां मेलयस्वेति प्रार्थये तं मेलयस्वेति ।

जन्म श्वपाकमध्येऽपि मेऽस्तु हरचरणवन्दनरतस्य ।
मा वाऽनीश्वरभक्तो भवानि भवनेऽपि शक्रस्य ॥

श्वाऽपि महेश्वरवचनाद् भवामि । 'स हि नः परमः कामः' इत्युपमन्युवचनादिति भावः । तत्रापि इतर-सम्बन्ध-रहितैः केवलं तव भक्तपादधूलीरेणुभिरेव भावि शरीराणामारम्भोऽस्तु । अयमाशयः— 'कार्यनिदानाद्धि गुणानधीत' इति न्यायाच्छिवभक्तपादरेणुसमारब्ध-शरीराणां शिवभक्त्यानुवृत्तिः स्यादिति ।

यत्र शाम्भवपादाब्जरजोलेशः पतिष्यति ।
तत्तावदुत्तमं तीर्थं तत्र शङ्करसन्निधिः ॥

इति शिवभक्तचरणकमलरेणुर्यत्र तदुत्तमं तीर्थं तत्रेश्वरसन्निधानात् । तथोक्तम्—

लीलामानुषविग्रहः शिवरतः शैवः शिवः केवलम्
तं मन्ये शिवमेव तत्पदरजो मान्यं सुराणामपि ।

---

१. प्रचय–पा० । २. अतितरसुखैः–पा० ।

तद्देहः शिवमन्दिरं शिवतरस्तस्मिन् सदा क्रीडति
व्यापारान्तरमन्तरा गिरिसुता त्यक्त्वाऽपि तं मन्दरम् ॥

इति शिवभक्तशरीरे शिवस्य सर्वदा सान्निध्यमस्तीति शिवभक्तवासस्थानं मुक्तिक्षेत्रम् ।

शिवार्चको वसेद् यत्र ततो द्वादश योजनम् ।
मुक्तिक्षेत्रमिति ज्ञेयं वेदवादरतैर्द्विजैः ॥

इति वचनात् ।

पापराशिविनाशाय शाम्भवाङ्गानिलोऽप्यलम् ।
गङ्गातरङ्गानिलवद् विशेषो न तयोर्मतः ॥

इति शिवभक्तानां माहात्म्यमपारमिति भावः ॥ ३६ ॥

अथ—

लोके शाम्भवपुङ्गवाः खलु खलु ध्वान्ताद्भुताहस्कराः
तत्पादाम्बुजरेणुमात्रममराः सर्वेऽपि वाञ्छन्त्यहो ।
तच्चेन्मूर्ध्नि तदा सदाशिवकृपा स्यादित्यवश्यं मुदा
कीटत्वं समुपेत्य शाङ्करगृहद्वारे चरन्त्यम्बिके ॥

इति शिवरहस्ये शिववचनात् सर्वेऽपि देवा यदा शिवभक्तचरणरेणुमभिवाञ्छन्ति, शिवभक्तसदनद्वारि कीटभावमेत्य चरन्ति तदा साक्षात् परमेश्वरप्रचारप्रदेशं गतकीटादिभावप्राप्तिरतिश्लाध्येति तां प्रार्थयते—

कीटा नागास्तरव इति ते किन्न सन्ति स्थलेषु
त्वत्पादाम्भोरुहपरिमलोद्वाहिमन्दानिलेषु ।
तेष्वेकं वा सृज पुनरिमं नाथ दीनार्तिहारिन्
आतोषं ते[1] मृड भवमहाङ्गारनद्यां लुठन्तम् ॥३७॥

तुम्हारे चरणकमल की गन्ध धारण कर शनैः शनैः प्रवाहित वायु से युक्त स्थान पर क्या कीड़े, सर्प या हाथी, वृक्ष आदि क्या नहीं होते हैं ? हे नाथ, हे दीनों के दुःख को दूर करने वाले, हे शिव, संसार की घोर अग्नि नदी में लुढ़क रहे मुझको तुम उन्हीं मे से कोई एक बना कर तब तक रहने दो जब तक तुमको पूरा सन्तोष न हो जाये ॥ ३७ ॥

शिवपदकमलगंधगंधवाहप्रचारप्रदेशे स्थितिना अगोऽयोग्यतयोपात्तः । स्थलेष्विति बहुवचनेन—विहर पितृवने वेत्युक्तस्थलेषु । तपस्यया परमेश्वरं प्रसादयित्वा कैलासे तरुरूपेणावस्थानं मुनीश्वरैः प्राप्तमिति शिवरहस्योक्तम् ।

---

१. आ तोषान्मां—पा० ।

प्रसीद नः प्रभो शम्भो प्रपन्नार्तिहराधुना ।
देहि नस्तरुरूपेभ्यः कैलासं गिरिजापते ॥
कैलासे खलु लिङ्गानि सन्ति दिव्यानि कोटिशः ।
तत्पूजनोपयुक्ताः स्मः स्वतः सप्रसवैः सदा ॥

इति पशुपतिवचसा 'भवामि सद्यः कृमिरथवा तरुजन्माप्यनेकशाख' इत्युपमन्युनापि शिवाज्ञासिद्धसर्वोऽपि भावः संमत एव इत्युक्तम् । संसाराङ्गारनदीमध्यपरिलुठन्तं मामेतेषु कृमिनागतरुष्वेकं वा यावत्तुष्टिस्तावत्सृज । अन्ततस्त्वमेव दीनानामार्तिनिवर्तक इति निश्चितोऽत एव मृडेत्युक्तः ॥ ३७ ॥

अथ—

जन्मानि सन्तु मम देव शताधिकानि माया न मे विशतु चित्तमबोधहेतुः ।
यस्मिन् क्षणार्द्धमपि ते चरणारविन्दात् माऽपैतु मे हृदयमीश नमो नमस्ते ॥
(ब्रह्मोत्तर १७।४५)

इति ब्रह्मोत्तरखण्डवचनम् । येषु निरन्तरं शिवचिन्तनं भवेत् तादृशानि जन्मानि मम सन्तु । तदर्थं च 'यं यं वाऽपि स्मरन् भावं त्यजन्त्यन्ते कलेवरमिति' गीतोक्त्या (८।६) शिवचरणाम्भोजे निश्चलं 'मन्मनोऽस्त्विति' श्लोकद्वयेन प्रार्थयते--

काले कण्ठस्फुरदमृतकलालेशसक्तावलोक-[1]
व्यग्रोदग्रव्यसनरुदित[2]स्निग्धरुद्धोपकण्ठे
अन्तस्तोदैरवधिरहितैरा[3]र्तिमापाद्यमानोऽ-
प्यङ्घ्रिद्वन्द्वे तव निविशतामन्तरात्मन्ममात्मा ॥३८॥

हे अन्तरात्मन् ! उस समय जब कि गले से निकल रहे स्वल्प शेष प्राण वायु को देखकर कातर एवं अत्यधिक विलाप कर रहे प्रियजन पास में उपस्थित हों उस समय अपार आन्तरिक पीडाओं से दुःखी किये जाने पर भी मेरा मन तुम्हारे च णयुगलों में प्रविष्ट हो । ३८ ॥

मरणसमये कण्ठप्रदेशसंसरत्प्राणवायुलेशपरामर्शदत्तदृष्टिकातरबहलरोदनकृत्प्रियजनव्याप्तनिकटदेशे । 'अतिक्रन्दद्बन्धुव्यसनजलधाविति' मानसोल्लासेऽपि तथोक्तः । अन्तर्नाडीभेदनकृतवेदनदुःखं प्रापितो-

१. काले कण्ठस्फुरदसुकलालेशसत्तावलोक–पा० । २. व्यसनिसकल–पा० । ३. रहितामार्त्ति०–पा० ।

ऽपि हे अन्तरात्मन् ! मनःप्रेरक ! तव पदयुगले मन्मनो निविशताम् । तस्मिन्नपि समये शिवमेव स्मरतामित्यर्थः ॥ ३८ ॥

अन्तर्बाष्पाकुलितनयनानन्तरङ्गानपश्यन्
अग्रे घोषं रुदितबहलं कातराणामशृण्वन् ।
अप्युत्क्रान्तिश्रममगणयन्नन्तकाले कपर्दिन्
अङ्घ्रिद्वन्द्वे तव निविशतामन्तरात्मन्ममात्मा ॥३९॥

भीतर आँसुओं से भरे हुये कातर नेत्र वाले अपने घनिष्ट लोगों को न देखते हुये, व्यग्र लोगों के रोदन से परिपूर्ण सामने की ध्वनियों को न सुनते हुये, और प्राण निकलते समय की पीड़ाओं पर भी ध्यान न देते हुये हे कपर्दिन् ! हे अन्तरात्मन् ! अन्तसमय में मेरा मन तुम्हारे चरण-युगल में ही विलीन हो ॥३९॥

'अनापृच्छय ज्ञातीनवशरुदितोच्छूननयनान् ।
गतिः का नस्तातेत्यतिकरुणमग्रे विलुठितान् ।'

इति 'मानसोल्लास' वाक्यात् बाष्पजलशोणितविलोचनान् कलत्र-पुत्रादीननवलोकयन् दुःखिनामधिकरोदनमशृण्वन् ।

मर्मसूत्कृष्यमाणेषु मुच्यमानेषु सन्धिषु ।
यद्दुःखं म्रियमाणस्य स्मर्यतां तन्मुमुक्षुभिः ॥

(शि. गी. ८।५३)

इति शिवगीतोक्तोत्क्रान्तिश्रमगणनामकुर्वन् हे कपर्दिन् तव पदयुगले मन्मनो निविशताम् ॥ ३९ ॥

पूर्वसानन्दाब्धेरिति परमेश्वरस्य स्वरूपमुक्तम् । 'ध्येयस्त्वयाऽहं देवेशि सदा जप्यं षडक्षरमिति' शिववचनान्निरन्तरं ध्यातार्थतत्प्रकार-माह—

चारुस्मेराननसरसिजं चन्द्ररेखावतंसम्
फुल्लन्मल्लीकुसुमकलिकादामसौभाग्यचौरम् ।
अन्तःपश्याम्यचलसुतया रत्नपीठे निषण्णं
[1]लोकातीतं शिवद सततं रूपमप्राकृतं ते ॥४०॥

मनोहर मुस्कान से युक्त मुख कमल वाले, चन्द्रमा की कला से विभूषित, खिल रही मालती के पुष्पों की कलिका-राशि की छटा को तिरस्कृत करने वाले, पार्वती के साथ रत्न वेदिका पर आसीन, तुम्हारे लोकोत्तर दिव्य स्वरूप को हे कल्याणप्रद ! मैं सर्वदा अपने हृदय में देखता रहूँ ॥ ४० ॥

---

१. लोकातीत सततशिवदं—पा० ।

निवेश्य चेतः प्रत्यङ्गमापदाग्रमनुक्रमात् ।
धारयेद् वदनाम्भोजे प्रसन्नस्मितकोमले ॥

इत्याह–'स्मेराननसरसिजमिति' । अतो मनोहरं सर्वाङ्गोपलक्षणम् । चन्द्ररेखाभरणम्—सर्वाङ्गाभरणोपलक्षणम् । विकसन्मल्लिकाकुसुमगुच्छमालासमानधवलम् । अन्तः–हृदयाकाशे । शम्भुराकाशमध्ये ।

तस्मात् सह तया शक्त्या हृदि पश्यन्ति ये शिवम् ।
तेषां शाश्वतिकी शान्तिर्नेतरेषामिति श्रुतिः ॥

इति श्रुत्युपबृंहणाभ्यामित्यर्थः । 'उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं, त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तमिति' (कैवल्यो० ७) श्रुत्या पार्वत्या सह रत्नपीठे स्थितं साम्बम्—

'अप्राकृतवपुः श्रीमान् लक्ष्यलक्षणवर्जितः ।' (वायवीय ३।१७)

इति श्रुत्या लोकातीतमिति । घृतरीतिघनीभूतसच्चिदानन्दत्वाच्चेत्यर्थः । हे शिव ! एतादृशं तव रूपं ध्यायामि । एवमेवेश्वरयोर्ध्यानप्रकारो वायवीयसंहितायामुक्तः ।

तस्योपरि शिवं ध्यायेत् साम्बं सर्वमनोहरम् ।
सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वावयवशोभितम् ॥
सर्वातिशयसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।
रक्तास्यपाणिचरणं कुन्दमन्द[1]स्मिताननम् ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं फुल्लपद्मत्रिलोचनम् ।
चतुर्भुजमुदाराङ्गं चारुचन्द्रकलाधरम् ॥
वरदाभयहस्तं च मृगटंकधरं हरम् ।
भुजगहारवलयं चारुनीलगलान्तरम् ॥
सर्वोपमानरहितं सानुगं सपरिच्छदम् ।
ततः सञ्चिन्तयेत्तस्य वामभागे महेश्वरीम् ॥
प्रफुल्लोत्पलपत्राभ[2]विस्तीर्णायतलोचनाम् ।
पूर्णचन्द्राभवदनां नीलकुञ्चितमूर्धजाम् ॥
नीलोत्पलदलप्रख्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
अतिवृत्तघनोत्तुङ्गस्निग्धपीनपयोधराम् ॥
तनुमध्यां पृथुश्रोणीं पीतसूक्ष्मवराम्बराम् ।
सर्वाभरणसम्पन्नां ललाटतिलकोज्ज्वलाम् ॥
विचित्रपुष्पसंकीर्णलम्बकेशोपशोभिताम् ।
सर्वतोऽनुगुणाकारां किञ्चिल्लज्जानताननाम् ॥

---

१. चन्द्र–पा० । २. मां–पा० ।

हेमारविन्दं विलसद् दधानां दक्षिणे करे।
दण्डवच्चापरं हस्तं न्यस्यासीनां महासने॥
पाशविच्छेदिकां साक्षात् सच्चिदानन्दरूपिणीम्।
एवं देवं च देवीं च ध्यात्वाऽऽसनवरे शुभे।
सर्वोपचारवद्भक्त्या भावपुष्पैः समर्चयेत्॥ इति॥ ४०॥
(वायवीय सं० उत्तरभाग २३।६-१७)

एवं ध्येयमीश्वररूपमुपवर्ण्य सञ्जातदिदृक्षो जाग्रति। तद्दर्शनमतिदुर्लभम् इति।

स्वप्नेऽप्यम्बुजबिल्वकोमलदलैरभ्यर्चयन्तीश्वरम्।
निद्रायामपि चित्रमेतदपरं निद्रापि तेषां क्षणम्॥

इति सर्वावस्थासु परमेश्वरमर्चयन्तः—'स्वप्नेऽप्यनन्यशरणाःमदेकपरदेवताः' इति शिववचनात् सदाशिवध्यानानुवृत्त्या स्वप्नेऽपि सन्तः शिवं पश्यन्ति। अहमप्येवमीश्वरं पश्यामि किंवा इत्याशयेनाह—

स्वप्ने वाऽपि स्वरसविदलद्दिव्यपङ्केरुहाभं
पश्येयं किं तव पशुपते पादयुग्मं कदाचित्।
क्वाहं पापः क्व तव चरणालोकभाग्यं तथाऽपि
प्रत्याशां मे घटयति पुनर्विश्रुता तेऽनुकम्पा॥ ४१॥

हे शिव! क्या मैं स्वप्न में भी कभी तुम्हारे स्निग्ध खिल रहे अलौकिक कमल की भाँति कान्ति वाले चरण युगल का दर्शन कर सकूँगा। कहाँ मैं पापी और कहाँ तुम्हारे चरण-दर्शन का सौभाग्य? किन्तु तुम्हारी विख्यात कृपा ही मुझ में एक आशा उत्पन्न कर रही है॥ ४१॥

हे शिव! विकसिततामरसाभं तव पदयुगलं स्वप्ने वा पश्यामि किम्।

स्वप्नेऽपि भगवान् शंभुर्भक्तभीमभयापहः।
भूरिभावनभारेण दृश्यते सततं मया॥

इतिवचनाद् भक्तिमद्भिर्बहुधा ध्यातः (भावितः) परमेश्वरो दृश्यत एव। 'अन्तर्गतमनन्यानामीश्वरार्पितचेतसाम्' इति शैव वचनादनन्यानां तथा स्यान्नैतादृशैः, इत्याह—'क्वाहम्' इति।

श्रीमहेशमहेशेति महेशेतिभिरुच्चरन्।
सद्यो महाघसंघेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥

इति शिवनामोच्चारणमात्रादखिलपातकनिवृत्तिश्रवणादीश्वराश्रितानां न पापगंधः।

काशिना संगृहीतस्य जलस्य क्षरणं यथा।
शिवभक्तिमतां पापं स्वयमेव विनश्यति ॥

इति शिवभक्तपापमप्रयत्नेन निवर्तितम्। निवृत्तये तेषामुद्यमाभावात्।

पापरहितोऽपि भाग्यात्पश्यति परमेश्वरम्।
स भाग्यवान् स पुण्यात्मा स धन्यो धन्यपूजितः ॥
यः शङ्करार्चनध्यानवार्तास्तुतिरतः सदा ॥

इति वचनोक्तभाग्यं मम क्व इत्याह—'क्व तव चरणालोकभाग्यमिति।'

कर्मणा मनसा वाचा शङ्करार्चापरायणाः।
अतीव दुर्लभा लोके भविष्यन्ति न संशयः ॥

इति त्रिकरणशिवभक्तो दुर्लभ इति भावः। तथापि—

स्वतन्त्रोऽपि महादेवः सोऽहं भक्तैर्वशीकृतः।
अवश्योऽप्यहमीशानो मद्भक्तवशतां गतः ॥
त्यक्त्वान्यपूजां मदनुग्रहेण मामेव ये सन्ततमर्चयन्ति।
तेभ्यः शिवोऽभीप्सितमर्थमीशो दास्याम्यहं भक्तजनाभिसेव्यः ॥

इति शिवरहस्यादौ स्वभक्तेषु श्रुतौ। तवानुकम्पया मम तव दर्शनाभिलाषो सम्पाद्यते।

शिवे मद्भक्तभक्तानां यो भक्तः सोऽपि मुच्यते।
तथा च सति मद्भक्तो मुच्यतेऽप्यत्र नाद्भुतम् ॥

इति शिवोक्त्या इति भावः ॥ ४१ ॥

नन्वाढ्यानां दर्शनमाकांक्षितव्यम् येभ्योऽभीष्टसकलार्थप्राप्तिः स्यात्, न भिक्षुकस्य। न हि भिक्षुको भिक्षुकं याचितुमर्हति सत्यन्यस्मिन् अभिक्षुके इति लौकिकानां व्यवहारादिति चेदत आह—

भिक्षावृत्तिं चर पितृवने भूतसंघैर्भ्रमेदं
विज्ञातं ते चरितमखिलं विप्रलिप्सोः कपर्दिन्[1]।
आवैकुण्ठद्रुहिणमखिलप्राणिनामीश्वरस्त्वं
नाथ स्वप्नेऽप्यहमिह न ते पादयुग्मं[2] त्यजामि ॥४२॥

तुम चाहे भिक्षा माँगने के लिये विचरण करो, चाहे प्रेत-समूहों के

१. कपालिन्–पा०। २. पद्मं–पा०।

साथ श्मशान में घूमो, हे कपर्दिन ! मैं भ्रम में डालने वाले तुम्हारे इस चरित्र को जान गया हूँ। विष्णु और ब्रह्मा तक समस्त प्राणियों के तुम स्वामी हो, अतः हे नाथ ! मैं यहाँ स्वप्न में भी तुम्हारे चरण-युगल का परित्याग नहीं करूँगा ॥ ४२ ॥

परमेश्वरस्य भिक्षाटनं वासिष्ठलैङ्गे प्रतिपादितम्।

अथ तेषामहं शम्भुर्मायापाशनिवृत्तये।
आत्मज्ञानप्रदानार्थं देवदारुवनं गतः ॥
कल्याणं वेषमास्थाय मन्मायाशक्तिवैभवात्।
विष्णुश्च मायया ब्रह्मन् भार्याऽभून्मम सुन्दरी ॥
तया सह मुने क्रीडां कृत्वा वेषं दिगम्बरम्।
वर्णाश्रमसमाचारविनिर्मुक्तस्तया सह ॥
अहं भिक्षाटनं तेषां मन्दिरे कृतवान् द्विज ॥

इति शिववचनम्। भूतसंघैः पितृवने संचारः शङ्करसंहितायामुक्तः।

भूतसेनाभिरनिशं भीताभिः परितो वृतः।
मुण्डमालाभिरन्याभिः सर्वदा परिवेष्टितः ॥
श्मशानभस्मभिर्गात्रमुद्धूल्य सततोद्यमः।
ननृते सुमहाटोपं कृत्वा कृत्वा मदेन सः ॥ इति ॥

हे कपर्दिन् ! इदं भिक्षाटनादिकं विप्रलिप्सोः वञ्चना कर्तुमिच्छतः तवेति विज्ञातं मया। यतस्त्वं विष्णवादिसकलचेतनानामीश्वरः।

'विष्णु ब्रह्मादयो देवाः मर्त्याश्च पशवः स्मृताः।'

'यस्मादीशो महतामीश्वराणां भवानाद्यः प्रीतिदः प्राणदश्च।
तस्माद्धि त्वामीश्वरं प्राहुरीशं सन्तो विद्वान्सः सर्वशास्त्रार्थविज्ञाः ॥

इति शिवरहस्य-हरिवंशयोर्वचनात्। हे नाथ ! स्वप्नेऽपि त्वत्पादयुग्मं न त्यजामि ॥ ४२ ॥

अथ यद्ययं कपर्दी सर्वेश्वरस्तदा तल्लक्षणभूतश्वेतछत्रोभयचारगजतुरगवरभूषणसुरभिगन्धानुलेपनदुकूलवासरमणीयानुचरमनोज्ञसेनापरिवृतो भवेत्। एतस्मिंस्तु—

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचराः
चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः।

(शिवमहिम्न-स्तोत्रम्)

इति पुष्पदन्तवचनादन्यथैव प्रतीयते। तस्मादयं नैश्वर्यवान्, न त्यजेयं तत्पादयुगलमिति कोऽयमाग्रह इत्यत आह—

आलेपनं भसितमावसतिः[1] श्मशान-
मस्थीनि ते सततमाभरणानि सन्तु ।
निह्नोतुमीश सकलश्रुतिसारसिद्ध-
मैश्वर्यमम्बुजभवोऽपि न च क्षमस्ते ॥ ४३ ॥

चाहे भस्म का लेपन हो, चाहे श्मशान का निवास और चाहे हड्डियाँ ही निरन्तर तुम्हारे आभूषण हों, किन्तु हे शिव ! समस्त उत्कृष्ट श्रुतियों में अथवा वेदों में साररूप से सिद्ध तुम्हारे वैभव को ब्रह्मा भी छिपाने में समर्थ नहीं ॥४३॥

हे ईश । भसिताद्यालेपनादीनि सर्वदा सन्तु परवञ्चनार्थमिदं सर्वमिति मम बोधोऽभ्रान्त एव । प्रबलप्रमाणासिद्धत्वात् तवैश्वर्यस्य, 'तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत् त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तस्थौ ।' शिवस्वरूपं वेदान्तैः प्रतिपाद्यते । 'निखिलनिगमान्तेषु विदिते तवैश्वर्ये' इत्यादिपुराणाभियुक्तसूक्त्युपबृंहितैवेत्यादिकारणवाक्यैर्निगदितं जगत्सृष्ट्यादिकर्तृत्वरूपमैश्वर्यमालपितुमम्बुजसंभवोऽपि न समर्थः । 'एष सर्वेश्वर एष भूतपतिरेष भूतपालः । सर्वैश्वर्यसम्पन्नः सर्वेश्वरशम्भुरिति (माण्डूक्योप० ६) श्रुतिभिरेष साक्षात्सर्वेश्वर इति निरूपित इत्यर्थः ॥ ४३ ॥

ननु देवतान्तराणामैश्वर्यमपि श्रुतिसिद्धं—'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।' (ऋ० १०।१२१।१) 'अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः । (महाना० उ० ५) 'इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा' 'अग्निरग्रे प्रथमो देवतानाम्' 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च (ऋ० १।११५।१) इत्यादि वाक्यानां दर्शनादिति चेन्न, शिवस्य आवैकुण्ठं सकलजीवेश्वरतया सिद्धेः अधिकं सकलश्रुतिमौलिसिद्धमैश्वर्यम् । देवतान्तरैश्वर्यमेकैकवाक्यगतं न नार्यविषमभूतम् । तथोक्तं सुदर्शनाचार्यैः—'विध्यर्थमध्ययनचोदनया गृहीताः जल्पन्ति यं किमपि वन्दिवदर्थवादा' इति । तथेहाप्याह—

विविधमपि गुणौघं वेदयन्त्वर्थवादाः
परिमितविभवानां पामराणां सुराणाम् ।
तनुहिमकरमौले तावता त्वत्परत्वे
कति कति जगदीशाः कल्पिता नो भवेयुः ॥ ४४ ॥

---

१. 'सधः'-पा० ।

वेदों के प्रशंसापरक वाक्य-अर्थवाद-सीमित वैभव वाले उद्धत देवताओं के अनेक प्रकार के गुणसमूहों का ज्ञापन भले ही करें किन्तु हे चन्द्रकलाधर ! यदि उतने वैभव को उनके पास मान लिया जाये तो कितने ही जगदीश्वर हमें मानने पड़ेंगे ॥ ४४ ॥

'सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सम्प्रसूयन्तः' 'यस्मात्सर्वमिदं ब्रह्म विष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम्' 'सहभूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं सम्प्रसूयत' इति श्रुतिपुराणनिकरैः ईश्वरसृष्टानां देवानामैश्वर्यं अर्थवादवाक्यैरुक्तं भवतु नाम, तथापि परिमितदेशकालज्ञानैश्वर्यादिभिस्ते निकृष्टा एव। आदित्यपुराणे—

सहस्रकोटयः सन्ति ब्रह्माण्डास्तिर्यगूर्ध्वगाः।
ब्रह्माणो हरयो रुद्रास्तत्र तत्र व्यवस्थिताः॥
आज्ञया देवदेवस्य महादेवस्य शूलिनः।
यस्याज्ञया जगत्स्रष्टा विरिञ्चिः पालको हरिः॥
संहर्त्ता कालरुद्राख्यो नमस्तस्मै पिनाकिने॥ इति॥

वेदपादस्तोत्रे—

हरं सुरनियन्तारं परं तमहमानतः।
यदाज्ञया जगत्सर्वं व्याप्य नारायणस्थितः॥ इति॥

लैङ्गे—'असंख्याताश्च कालाख्या असंख्याताः पितामहाः।
हरयश्चाप्यसंख्याता एक एव महेश्वरः॥ इति॥

स्कान्दे—असंख्या विलयं यान्ति ब्रह्माणः पण्डितोत्तमाः।
असंख्या विष्णवो रुद्रा असंख्या वासवादयः॥ इति।

शैवे-'ब्रह्मा विष्णुदिने चैको विष्णू रुद्रदिने तथेति' ब्रह्मादीनामुत्तरोत्तरैकैकदिने पूर्णायुरित्युक्तम्। तेषां वाक्यानां प्रतीतार्थपरत्व-स्वीकारे अनिष्टमाह—'कतिकतीति'। बहूनामीश्वरत्वे—

बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद्वृन्दमवसीदति॥

इति परमेश्वरविरोधेन जगन्नाशका भवेयुरिति भावः। तस्मात् 'त्वत्तः किल जायन्ते प्रतिकल्पं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्राः। तेष्वपकृष्टेषु विभो न स्युस्तदधस्तना किमपकृष्टा' इति अग्न्यादयस्तूत्कृष्टा इति न विचारः॥ ४४॥

ननु किमेवं भवेत् नानावाक्यानां अर्थनिर्णयो मीमांसान्यायैः कार्यः।

जैमिनीये च वैय्यासे विरुद्धांशो न कश्चन।
श्रुत्या वेदार्थविज्ञाने श्रुतिपारं गतौ हि तौ॥

इति पराशरवचनादिति चेद्, अत आह—

बलमबलममीषां बल्बजानां विचिन्त्य
कथमपि शिव कालक्षेपमात्रप्रधानैः।
सकलमपि रहस्यं नाथ निष्कृष्य साक्षात्
सरसिजभवमुख्यैः साधितं नः प्रमाणम्॥ ४५॥

हे शिव ! इन असार वाक्यों का बलाबल विचार करके किसी प्रकार निष्कर्ष निकला कि इनसे मुख्यतः समय-यापन में ही सहायता मिलती है। हे नाथ ! ब्रह्मा आदि प्रधान देवों के द्वारा समस्त रहस्यों का निचोड़ निकाल कर हमारे ही प्रमाण को सिद्ध किया जाता है॥ ४५॥

अमीषामसाराणां वाक्यानां बलाबलविचारस्य काकदन्तविचारवत् निष्फलत्वेन न केवलकालक्षेपपरैरेवैतादृशविचारे प्रवर्तितव्यं नान्यैरित्यर्थः। तर्हि निगमागमार्थनिर्णयः कथं स्यादिति चेत्तत्राह 'निखिलमपीति' श्रीशिवपुराणे (विद्ये० संहिता ३।७, ११ तथा वायवीयसंहिता २।२, ३, २६, ३१॥)

मुनीनां षट्कुलीनानां ब्रुवतामितरेतरम्।
इदं परमिदं नेति विवादः सुमहानभूत्॥
परस्य दुर्निरूप्यत्वान्न जातस्तत्र निर्णयः।

इत्युपक्रम्य तेषामृषीणां ब्रह्मसभोपसर्पणमुक्त्वा—

भगवन्नन्धकारेण महता वयमावृताः।
खिन्ना विवदमानाश्च न पश्यामोऽत्र यत्परम्॥

इत्यादिना तेषां सामान्येन सकलकारणभूतस्य दैवतस्य प्रश्नमुत्थाप्य एवं पृष्टस्तदा ब्रह्मेत्यारभ्य—

उत्थाय सुचिरं ध्यात्वा रुद्र इत्युच्चरन् गिरम्।
आनन्दक्लिन्नसर्वाङ्गः कृताञ्जलिरभाषत॥
यस्मात् सर्वमिदं ब्रह्म विष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम्।
सह भूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं सम्प्रसूयते॥

(वायवीयसं० ३।२)

इत्यादिब्रह्मवाक्येनानितरसाधारणानेकशाखा-विप्रकीर्णविविधवैभव-निष्कर्षपरेण ब्रह्मवाक्येन 'शिवः परदेवतेति' प्रतिष्ठितम्। तथा पाद्मे—

श्रुतानि सर्वशास्त्राणि पुराणान्यखिलानि च।
धर्मशास्त्राणि सर्वज्ञ त्वत्तः सूतमहामते॥
अस्माकं संशयः कश्चित् सुमहान् हृदि वर्तते।
येनार्ता इव सञ्जाता छेत्तुं तं त्वमर्हसि॥
को देवः परमो ज्यायान् कथं चाराध्यते हि सः।
आराधिते फलं किं स्यादेतत्सत्यं ब्रवीहि नः॥

इति श्रुतचरानेकपुराणेषु नानादेवतोत्कर्षप्रतिपादनं श्रुतवतां किं तत्त्वविवक्षया प्रवृत्तं किं वा श्रोतृबुध्यनुसारादिति निर्धारयितुमशक्नुवतामृषीणां प्रश्नमुपन्यस्य—

अत्र वः कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्।
विष्णोः सनत्कुमारस्य सम्वादं पापनाशनम्॥
इदमेव पुरा प्रश्नं पृष्टवान् विष्णुमव्ययम्।
सनत्कुमारो भगवान् परापरविभागकृत्॥
मुनेस्तस्य वचः श्रुत्वा विष्णुः सर्वविदां वरः।
यदुवाच महाभाग तच्छृणुध्वमतन्द्रिताः॥

इति सूतस्य प्रतिवचनमुक्त्वा—

एक एव शिवो ज्यायान् द्विधा च बहुधा श्रुतः।
वेदेषु च पुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयते॥

इत्यादिना विष्णुवचनेन शिवस्य सर्वोत्कर्षः समर्थितः। ब्रह्माण्डपुराणे—

पुरा पितामहं देवं मेरुसंस्थं महर्षयः।
प्रोचुः प्रणम्य देवेशं किमेकं तत्त्वमव्ययम्॥

इति प्रश्नेनोपक्रम्य—

स मायया महेशस्य मोहितो लोकसंभवः।
अविज्ञातपरं भावं स्वात्मानं प्राह वर्षिणम्॥

इत्यादिना ब्रह्मोक्तस्वोत्कर्षं श्रुत्वा तमसहमानस्य नारायणस्य स्वप्रभावातिशयोपवर्णनमवतार्य—

एवं विवदतो मोहात् परस्परजयैषिणोः।
आजग्मुस्तत्र तौ देवौ वेदाश्चत्वार एव हि॥
अन्वीक्ष्य देवं ब्रह्माणं यज्ञात्मानं च संस्थितम्।
प्रोचुः संविग्नहृदया याथात्म्यं परमेष्ठिनः॥

ऋग्वेदः—यस्यान्तःस्थानि भूतानि यस्मात्सर्वं प्रवर्तते ।
यमाहुस्तत्परं तत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः ॥
यजुर्वेदः—यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समर्च्यते ।
यमाहुरीश्वरं देवं स देवः स्यात् पिनाकधृक् ॥
सामवेदः—येनेदं भ्राम्यते चक्रं यदाकाशान्तरं महत् ।
योगिभिर्वन्द्यते तत्त्वं महादेवः स ईश्वरः ॥
अथर्ववेदः—यं प्रपश्यन्ति देवेशं यतन्तो यतयः परम् ।
महेशं पुरुषं रुद्रं स देवो भगवान्भवः ॥

इति वेदैरुपदिष्टमर्थमविगणय्य स्थितस्य ब्रह्मणस्तत्कालाविर्भूतनीललोहितरुद्रकारिततदीयपञ्चमशिरोहरणानन्तरं सूर्यमण्डले प्रादुर्भूतस्य शिवस्योपदेशेन परशिवस्य परभावो स्पष्टीकृतः। एवं पराशरादित्यादिभिः शिव एव सकलदेवोत्कृष्ट इति प्रतिपादितः ।
सौरसंहितायाम्—

साक्षाद्वेदान्यवाक्यानां निष्ठा रुद्रः पशोः पतिः ।
अम्बिकापतिरानन्दः स्वयमेव न संशयः ॥
अस्य नारायणस्यापि ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
रुद्रस्यापि शिवो ध्येयः किं पुनः सर्वदेहिनाम् ॥

इत्युक्त्वा सकलशब्दजालप्रकृतिभूतप्रणववाच्यः परमेश्वर इति प्रतिपादितः ।

यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ।
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥

इति तैत्तिरीयवाक्यार्थोपबृंहितः ।

अकाराद्यास्त्रयो वर्णा अकारात् प्रणवस्य तु ।
अकाराद्या उकारात्तु स्वराः शिष्टा मकारकात् ॥
व्यञ्जनानि समस्तानि प्रकाशन्ते यथा पुरा ।
सर्वं बिन्दोर्भात्येव बिन्दुर्नादात्प्रकाश्यते ॥
नादः साक्षात् परब्रह्मस्वरूपात् परमात्मनः ।
विभासते ततः साक्षात् मातृकावर्णरूपिणी ॥
सर्वविद्यालया शुद्धा केवलं प्रणवात्मिका ।
वेदाः स्मृतिपुराणानि यत्किञ्चिदपरं परम् ॥
शब्दरूपं तु तत्सर्वं मातृका याः विजृम्भणम् ।
प्रणवः सर्ववेदानामत आद्यन्तमध्यगः ॥
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥ इति ।

इति एवं प्राधान्येन महादेवः पुराणैरखिलैरपि तात्पर्येणम्बिका-नाथः सर्वज्ञः प्रतिपाद्यत इति चोक्तम् । तथा—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

(शिवम० ७॥)

इति पुष्पदन्तेनापि । 'श्रुत्यादि-सर्व-शास्त्राणां निष्ठा साम्बशिवे स्मृतेति, सूतसंहितायाम् मार्गप्रामाण्याध्याये पर्यवसानम्-ब्रह्मविष्णुरुद्र-सूर्यसूतपराशरादित्यादिभिरुक्तमस्माकं प्रमाणमेव तस्मात् सकल-प्रमाणतात्पर्यार्थः सर्वोत्कृष्टः शिव एवेति सिद्धम् ॥ ४५ ॥

एवं नत्वा जन्मेत्यारभ्यानेकप्रकारेण परमेश्वरं प्रसाध्य—

गीतिमेयादियोगेन न गच्छेत्परमं पदम् ।
शिवस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते ॥

इति योगयाज्ञवल्क्योक्तशिवानुचरभावस्य द्वितीयं जप्त्वा देवमेवानु-प्रविशतीति शिवसायुज्यसन्निहितत्वेन शिवानुचरभावं प्रार्थयते ।

विहरपितृवने वा विश्वपारे पुरे वा
रजतगिरितटे वा रत्नसानुस्थले वा ।
(दिश) भवदुपकण्ठे देव मे भृत्यभावं
परमशिव तव श्रीपादुकावाहकानाम् ॥४६॥

हे परमशिव ! तुम चाहे श्मशान में विचरण करो, चाहे लोकातीत सोमलोक में, चाहे रजतपर्वत के तट पर और चाहे रत्नपर्वत की भूमि पर । हे देव ! तुम मुझे अपने निकट अपनी चरण-पादुका के वाहकों का सेवक-भाव प्रदान करो ॥ ४६ ॥

शिवस्य पितृवनविहारः, पूर्वब्रह्मसृष्टभूतसंघाः सकलप्रजाहिंसका-स्तेषां निग्रहे स्वयमशक्तो ब्रह्मा प्रार्थितवान् । ततो मया तान्निहत्य तत्र स्थित इति देव्या पृष्टे शिवेनोत्तरमुक्तमानुशासनिके—

श्मशानादपि मे स्थानं नान्यं मेध्यतमं भुवि ।
मुनिभिर्मेध्यमित्युक्तं स्थानं यत्र वसाम्यहम् ॥
आचरद्भिर्व्रतं रौद्रं मोक्षकामैस्तु सेव्यते ।
सर्वलोकहितार्थाय श्मशाने निवसाम्यहम् ॥ इति ।

श्मशानमात्रस्य मोक्षार्थिजनसेव्यत्वं शिवावस्थानादित्युक्तम् । तदा किमु वक्तव्यम् । महाश्मशानं विमुक्तं मोक्षार्थिभिर्नत्याज्यमिति । तथा जाबालश्रुतिः (जा. उ. १) 'अविमुक्तं न विमुञ्चेदिति ।' अथ 'यदपरं परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषु लोकेषु, सोऽध्वनः पारमाप्नोति । श्रेष्ठस्याध्वनः पारमशीयेत्यादिश्रुतिसिद्धतया पूर्वोक्तषडध्वातीतसोमलोकाख्यपरशिवपुरे—

ये सम्प्राप्ताः परं स्थानं ध्यानयोगरता नराः ।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरे संसारसागरे ॥

इति ध्यानेन शिवसायुज्यं गता यस्य प्रयाणमन्वयुर्देवादेव चास्य महिमानं पचन्त इति श्रुत्या तेऽपि शिवानुचराः । श्मशाने पिशाचरूपेण—'स्मरहरपिशाचाः सहचराः' इति वचनात् । न च पिशाचभाव प्रार्थना अनुचितेति वाच्यम् ।

'भजेम भवदन्तिकं प्रकृतिमेत्य पैशाचिकीमिति' शिवाज्ञया तत्सन्निधौ तदाशास्यत्वश्रवणात् । 'पिशाचत्वं वरं विद्धि, इति श्रवणात् । रजतगिरिरत्नसानौ श्रीकण्ठनाम्नः शिवस्यानुचरभावो गाणपत्यरूपेण । एवं महाप्रभूणां स्थानभेदेन भृत्यभेदो लोकेऽपि प्रसिद्धः । अनेन सर्वदा शिवसान्निध्यं विवक्षितमित्युक्तं 'परमशिव तव श्रीपादुकावाहकानाम्' इति ॥ ४६ ॥

प्राप्यापि जन्म मनुजत्वमुपेत्य तत्र
ब्राह्मण्यमेत्य समधीत्य च वेदविद्याम् ।
मीमांसया सह ततः परमिन्दुमौलि-
ध्यानं विहाय वद तः क्व गतिर्भवानि ॥

इति शिववचनादीश्वरध्यानाभावे पूर्वत्र सम्प्रार्थितार्थलाभः कथं स्यात्, तस्य सर्वार्थसाधकत्वाद् इत्याह—

न किञ्चिन्मे चेतःसमभिलषणीयं त्रिभुवने
सुखं वा दुःखं वा भवत्यभवद्भावि भगवन् ।
समुन्मीलत्पाथोरुहकुहरसौभाग्यमपि ते
पदद्वन्द्वं चेतः परिचयमुपेयान्मम सदा ॥४७॥

हे प्रभो ! तीनों लोकों में मेरे मन को कुछ भी अभीष्ट नहीं है । यहां सुख या दुःख तो हो ही रहे हैं, हो चुके हैं और होंगे भी । विकसित हो

रहे कमल-कोष की छटा वाले तुम्हारे चरण-युगल में मेरा मन सदा परिचय प्राप्त करता रहे ।। ४७ ।।

शान्तिदान्तिमतः शिवध्यानं स्याद् इति उक्तं न किञ्चिदिति पूर्वार्द्धे । अतो मच्चेतस्ते हे शिव सम्यगुन्मीलदरविन्दान्तर्विलसत्सौभाग्यापहारिणि तव चरणयुगले पुनः पुनरवगतिमुपेयात् प्राप्नोतु । 'ध्येयस्त्वयाऽहं देवेशि, सदा जप्यं षडक्षरमिति' शिवोपदेशादित्याह— 'सदेति' । तथोक्तम्—

मच्चित्तभ्रमरो नित्यं तवास्तु पदपङ्कजे ।
यथा तिष्ठति देवेश तथा कुरु महेश्वर ।।

इति शिवरहस्ये । एवं—

शिवचरणस्मरणेन पूजया च स्वकतमसः परिमुच्यते हि जन्तुः ।
न हि जननप्रभवप्रणाशहेतुः शिवचरणस्मरणादृतेऽस्ति किञ्चित् ।।

इति सूतसंहितायामपि (ब्रह्मगीता ६।४७) तस्य मोक्षहेतुत्वमुक्तम् ।।४७।।

अथ किं बहुनोक्तेन शिवभक्तिमुमुक्षुभिः ।
नित्यमव्यभिचारिणी कर्त्तव्या सत्यमुच्यते ।।
(सूतसं० यज्ञवै० २२।४८)

इतिवचनात् अव्यभिचारिणी भक्तिर्मम नाऽभूदतः परमेश्वरः कथं प्रसन्नो भवेत् तत्तु भक्त्याभिमुख्यं विलम्बेन । अपराधे झटित्येवाभिमुख्यं महाप्रभुषु दृष्टम् ।

नियमेन सदा कुर्यात् भक्तिं वा द्रोहमेव वा ।
तस्यापि च प्रसन्नोऽसौ फलं यच्छति वाञ्छितम् ।।

इति शिवगीता (?) वचनादीश्वरोऽप्यपराधित्वेन ज्ञापिते मयि शिक्षितुं वा शीघ्रमभिमुखो भविष्यतीत्याशयेन शिवं प्रति स्वयमपराधीति ज्ञापयति—

उदरभरणमात्रं साध्यमुद्दिश्य नीचे-
ष्वसकृदुपनिबन्धादाहितोच्छिष्टभावाम् ।
अहमिह नुतिभङ्गीमर्पयित्वोपहारं
तव चरणसरोजे तात जातोऽपराधी ।। ४८ ।।

निम्न कोटि के मनुष्यों से बारम्बार सम्पर्क के कारण केवल पेट भरने को लक्ष्य निश्चित करके यहाँ मैं तुम्हारे चरण-कमलों में इस जूठे भावों वाली प्रणतिपूर्ण रचना की भेंट चढ़ा कर अपराधी हो गया हूँ ।। ४८ ।।

क्षुद्रप्रयोजनाय व्रात्येष्वनेकधा शिवस्मरणविरहितग्रन्थकरणावशिष्टाम्, अत एवोच्छिष्टां निन्दिताम् उक्तरचनां तव चरणारविन्दे तामर्पयित्वा जातोऽस्म्यपराधी।

शङ्करः सर्वभावेन शरण्यः शरणार्थिनाम्।
सेव्यः पूज्यः सदा सर्वैरप्रमादेन साधुभिः॥

इतिवचनोक्तप्रकारविरहादिति भावः॥ ४८॥

यं पश्यति महादेवः सादरं करुणानिधिः।
तमुद्धरत्ययत्नेन घोरसंसारसागरात्॥

इति वचनादेव परमेश्वरः सख्यं सम्पाद्य—

अपराधिषु भक्तेषु क्षमा युक्ता महात्मनाम्।
ममापराधाः क्षन्तव्याः देहि काश्यां सदा स्थितिम्॥

इति वचनाद् भक्तकृतापराधान् क्षमस्वेति परमेश्वर-प्रार्थनां कुर्वन् स्वस्य विवक्षितमाह—

सर्वं सदा शिव सहस्व ममापराधं
मग्नं समुद्धर महत्यमुमापदब्धौ।
सर्वात्मना तव पदाम्बुजमेव दीनः
स्वामिन्ननन्यशरणः शरणं वृणीते॥ ४९॥

हे शिव! तुम सदा मेरे सभी अपराधों को क्षमा करो। इस घोर विपत्ति-समुद्र में डूबे हुये मेरा उद्धार करो। हे नाथ! यह बेचारा दूसरे की शरण न लेकर पूर्णतः तुम्हारे ही चरण-कमल का आश्रय वरण करता है॥ ४९॥

हर यद्यस्मत्कृतमपराधं विविधं कृपया हरसि सदा।
गिरिश महापज्जलधेरस्मानुद्धर धीरकृपाजलधे॥
इति वचनादाह—'सर्वमिति।'

अस्य देहस्यावसाने मोक्षपात्रं कुरुष्व माम्।
न त्वदन्यो मोक्षहेतुरिति वेदो वदत्यदः॥

इति वचनादित्ति भावः।

अनन्यशरणो नित्यं सक्तान्तःकरणः शिवे।
स वै धन्यः पुण्यात्मा तस्याऽप्राप्यं न किञ्चन॥

इति वचनादाह—'सर्वात्मनेति' कायवाङ्मनोभिः। दीनो वराकः। गत्यन्तररहितः। त्वदेकशरणः। एतादृशोऽयं शरणं वृणीते याचते॥४८॥

तत्त्वां दुरापं मनसोऽधिपञ्च व्यपेतरूपं परमार्थरूपम् ।
गुणैकनिष्ठाः प्रकृतौ विलीनाः कथं पुनस्स्तोतुमलं गिरोम् ॥

इतिब्रह्मवैवर्तवचनादपर्यन्तरमणीयगुणाश्रयस्य हे शिव तव स्तुतिश्चित्तैकाग्र्यपूर्वकं केवलया वाचा शरणं वृणे इत्याह—

आत्मार्पणस्तुतिरियं भगवन्निबद्धा
यद्यप्यनन्यमनसा न मया तथाऽपि ।
वाचाऽपि केवलमयं शरणं वृणीते
दीनो वराक इति रक्ष कृपानिधे माम् ॥५०॥

हे भगवन् ! यद्यपि मैंने अनन्य मन से ही इस 'आत्मार्पणस्तुति' की रचना नहीं की है, तथापि केवल वाणी से ही यह मैं शरण का वरण करता हूँ, (अतः यह) दरिद्र है; बेचारा है ऐसा समझ कर हे कृपासिन्धु ! मेरी रक्षा करो ॥ ५० ॥

तथापि भवदाश्रयतामुपेयुषस्तवांघ्रिपद्मं प्रणतार्तिभञ्जनम् ।
सुघोरसंसारदवाग्निपीडितो भजामि नित्यं भवभीतिशान्त्यै ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनाद् दीनमनाथं त्वदेकशरणं मां परिपालयेति प्रार्थयतीति भावः ।

शरणं भव भव शरणं भव भव शरणं भव भव करुणाब्धे ।
गिरिश महापज्जलधेरस्मानुद्धर धीरकृपाजलधे ॥

इत्याह 'कृपानिधे' इति ।

मय्येवार्पितकर्मणामनुदिनं मय्येव सक्तात्मनां
मत्पूजारतचेतसां नियमतो मद्ध्यानपूतात्मनाम् ।
सौभाग्यं सुखमक्षयं च सततं दास्येऽपवर्गं ततः
सत्यं सत्यमिदं गिरीन्द्रतनये सत्यं पुनः शोभने ॥

इति शिववचनाच्छिवाश्रितानामीश्वरः सर्वाभीष्टं प्रयच्छतीति 'सर्वेशमञ्जसा' ।

वेदान्तवाक्यनिचयं सुविचार्य येन
विश्वाधिको निगदितो निखिलैर्वरेण्यः ।
तनोमि शा—रा—श्रेरुहमित्रमीड्यं
श्रीरंगराजसुतमप्पयदीक्षितेन्दुम् ॥

श्रीमन्मनीषानुपमाखिलेषु शास्त्रेषु येषां च परेशभक्तिः ।
स्वयंप्रकाशेन्द्रसरस्वतीनां शिष्येण तेषां शिवतत्परेण ॥
श्रीशङ्करानन्तरसंगतेन नारायणाख्येन बुधेन भक्त्या ।
आत्मार्पणस्तोत्रवरस्य भावलेशप्रकाशः प्रकटीकृतोऽयम् ॥

इति श्रीशैवशङ्करनारायणभट्टकृत आत्मार्पणस्तोत्र-भावलेशप्रकाशः सम्पूर्णः ॥

ये वेदवेदान्तधना महाजनाः शिवाभिमानैकनिरस्तकिल्बिषाः ।
नमामि वाचा शिरसा हृदा च तान् भवाहिवेगस्यनिवारकानहम् ॥

॥ शिवमस्तु सर्वदा सर्वेषाम् ॥

परिशिष्ट—१

रत्नत्रयपरीक्षा

अथ रत्नत्रयपरिक्षाख्यामष्टश्लोकीं संक्षेपेण व्याकुर्महे—

नित्यं निर्दोषगन्धं निरतिशयसुखं ब्रह्मचैतन्यमेकं
धर्मो धर्मीतिभेदद्वयमयति पृथग्भूय मायावशेन।
धर्मस्तत्रानुभूतिः सकलविषयिणी सर्वकार्यानुकूला
शक्तिश्चेच्छादिरूपा भवति गुणगणस्याश्रयश्चैक एव॥१॥

नित्यं दोषगन्धेनापि रहितं निरतिशयसुखात्मकम् अद्वितीयं ब्रह्म चैतन्यं मायया कल्पितभेदं सत् धर्मधर्मिविभागं प्राप्नोति। जीवब्रह्मविभागवदयं धर्मधर्मिविभागोऽपि। तत्र धर्मस्वरूपमात्र-प्रकाशरूपस्य धर्मिणो परब्रह्मणः सकलप्रपंचविषयानुभूतिर्भवति। तदुक्तं कूर्मपुराणे शिवेनैव—

तयाहं संगतो देव्या केवलो निष्कलः परः।
पश्याम्यशेषमेवेदं यस्तद्वेद स मुच्यते॥ इति॥

(कू. पु. पूर्वार्ध १५।१६०)

स एव धर्मः, तस्यसर्वकार्यानुकूला शक्तिः सर्वोऽपि गुणगणश्च भवति। तदुक्तं श्वेताश्वतरोपनिषदि (६।८)—

'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च' इति अस्य शक्तिरेव स्वाभाविकी स्वभावभागं प्राप्ता ज्ञानरूपा बलरूपा क्रियारूपा चकारादिच्छारूपा चेत्यर्थः। धर्म ज्ञानरूपा शक्तिः। सैव धर्मिणः सकलगुणाद्यात्मिका चेत्यभियुक्ता अप्याहुः—

शक्तिः शरीरमधिदैवतमन्तरात्मा
ज्ञानं क्रियाकरणमासनजामिलेच्छा।
ऐश्वर्यमायतनमावरणानि च त्वं
किं तन्न यद्भवसि देवि शशाङ्कमौलेः॥ इति॥१॥

अस्यैव धर्मज्ञानस्य महिमानमुपनिषत्सिद्धं तावत्प्रपञ्चयति—

वेदज्ञा धर्ममेतं प्रविततमखिलाधारमाकाशमाहुः
किं चानन्दं मनोवागविषयमधिकं धर्मिणो वर्णयन्ति ।
सत्ता स्फूर्तिः सुखं च त्रयमपि जगतां सञ्जिरन्ते तदंशं
प्राणाकाशाद्युपास्तीः कतिचिदपि तदालम्बनास्ते वदन्ति २

बृहदारण्यकोपनिषदि—"यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य दिवो वा यदर्वाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं च भव्यं च भविष्यच्चेत्याचक्षते, कस्मिंस्तदोतं च प्रोतं च" इत्यादिना पृष्टेन याज्ञवल्क्येन "आकाश एव तदोतं च प्रोतं च" इत्यभिहिते "कस्मिन् वा आकाश ओतश्च प्रोतश्च" इति पुनस्तया पृष्टेन तेन "एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति" इत्यादिना अक्षरशब्दितसर्वज्ञत्वादिगुणविशिष्टपरं ब्रह्म प्रतिपाद्य "तस्मिन् खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्च" (बृ० उ० ३।८।३-११)" इत्यादिनोत्तरमभिहितम् ॥ तत्राकाशो न भूताकाशः, तस्य परिच्छिन्नस्य प्रतिकल्पं भिन्नस्य च सर्वदेशवर्तिप्रपंचाधारत्वासंभवात् । अतोधर्मज्ञानरूपा चिदम्बरशक्तिरेवाकाश इत्यवसीयते । तत्र आ समन्तात् काशयति सर्वं प्रपंचमवभासयतीति परब्रह्मणः सर्वज्ञानरूपे तस्मिन्नवयवार्थानुगतिसद्भावात्—

यस्य सा परमा देवी शक्तिराकाशसंज्ञिता ।
(सोऽ) नन्तैश्वर्ययोगात्मा महेशो दृश्यते हि सः ॥
(उत्तरार्द्ध ३१।३६)

इति श्रीकूर्मसूक्तस्याकाशशब्दवाच्यत्वावगमात् । एवं छान्दोग्योपनिषदि मन्त्रभागे—

"ऋतं सत्ये प्रतिष्ठितं भूतं भविष्यता सह" इति भूतभविष्यद्वर्तमानसकलप्रपंचाधारत्वेन प्रकृते सत्त्वे आकाश उपनिरज्यतु "मह्यमन्नमधोश्रियम्" इति आकाशशब्दप्रयोगेणात्तरधर्मिको बृहदारण्यकोक्ताकाश एवायं जगदाधार इत्यवसितम् । अत्र ऋतशब्देनावितथवाचिना तादृग्विषयतया निश्चितत्वात् पारिशेष्याच्च वर्तमानत्वं युक्तम् । अयं चाकाशो भूताकाश इति अनन्तरमेव स्फुटीकृतम्—"आकाशस्यैष आकाशो यदेतद् भाति मण्डलम" इत्यत्र प्रकृतिवाचिना एतच्छब्देनैव प्रकृतमाकाशं परा-

मृश्य सुप्रसिद्धाकाशस्याप्याकाश इति मन्मथस्यामन्मथ इत्युक्त्या मन्मथान्तरवदाकाशान्तरं प्रतीयते। "आकाशो हवै नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदंतरा तद्ब्रह्मेति" निर्विकारतया नामरूपास्पृष्टात् परब्रह्मणो नामरूपनिर्वोढतया प्रतिपादित आकाशोऽपि तद्धर्मभूता चिद्स्वरशक्तिरेव, तत्राकाशपदरूप्यवगमात्॥ एवं तावद्वाजसनेयिनः छन्दोगाश्च धर्मज्ञानरूपां चिद्स्वरशक्ति सर्वाधारं सर्वकारणमाकाशमाहुरिति स्थितम्, तैत्तिरीयास्तामेव वाङ्मनसातीतं परब्रह्मणो निरतिशयानन्दमाहुः—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन॥ इति।
(तै० उ० २।९।१)

अत्र हि ब्रह्मगतपरमानन्द "यदेष आकाश आनन्दो न स्याद् (तै० २।७) इत्याकाशशब्दसामानाधिकरण्याद् अस्य चिद्स्वरशक्तिरूपत्वमवसीयते न च तत्र यदेष इति प्रकृतानन्दमयपरैतच्छब्दसामानाधिकरण्यतः कश्चिद् दोषः। आनन्दमयोऽपि सैव चिद्स्वरशक्तिरित्यङ्गीकारात्। आनन्दमयशब्दो हि प्रचुरानन्दमाचष्टे, न तु प्रचुरानन्दविशिष्टं धर्मिणम्, 'तत्प्रकृतवचने मयडिति' (पा० ५।४।२१) सूत्रस्य ह्यन्नमयं वर्तते यवागूमयं वर्तते इत्याद्युदाहरणानां प्रचुरमन्नं वर्तते प्रचुरा यवागू वर्तत इत्याद्यर्थः शाब्दिकैर्वर्णितः। अन्नमयो यज्ञ इत्याद्युदाहरणानां तु सूत्रस्यार्थान्तरमाश्रित्याङ्गीकृतानां प्रकृतं प्रस्तुतमन्नमस्मिन् यज्ञे इत्यादिरेवार्थस्तैरङ्गीकृतः। अस्मिन्नर्थे प्राचुर्यानुप्रवेशस्तेषामभिमतः। इह चावश्यं प्राचुर्यविवक्षया भाव्यं, मयडर्थप्राचुर्यविवरणार्थतयैवाग्रिमानन्दमीमांसाप्रवृत्तेः, स चानन्दमयशब्दोक्तः प्रचुरानन्दः परब्रह्मधर्मिक इत्येतदग्रिमात् "स एको ब्रह्मण आनन्दः' (तैत्ति- २।८), 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्" (तै० उ० २।४) इत्यतः सिद्ध्यति।

न च "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तै० उ० २।१) इति प्रकृते ब्रह्मणि निरूपणीये तद्धर्मरूपस्य प्रचुरानन्दस्य प्राधान्येन निरूपणम् प्रकृतासंगतमिति वाच्यम्। सत्यं ज्ञानादिमन्त्रोदितगुहारूपतया अन्नमयादिकोशचतुष्टयनिरूपणं तदन्तर्गतपरमव्योमरूपत्वेनानन्दमयनिरूपणं "ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठेति" (तै० उ० २।५॥) तस्याधार-

त्वेन ब्रह्मनिरूपणमित्यादिप्रकारेण सर्वस्याप्यग्रिमसन्दर्भस्य सत्यज्ञानादिमन्त्रार्थविवरणतया संगतेः। तथा "सदेव सोम्येदमग्र आसीद्" (छां० उ० ६।२।१) इत्यधीयानाः छन्दोगाः घटः सन् पटः सन् इति प्रतीयमानां प्रपञ्चसत्ताचिच्छक्त्यात्मकब्रह्मसत्तांशरूपामावेदयन्ति, इदं हि वाक्यं घटशरावादिकं पूर्वाह्णे मृदेवासीदिति लौकिकवाक्यतुल्यच्छायम्। ततश्च यथा घटशरावादिषु मृत्वप्रतीतिः पूर्वाह्णदृष्टमृत्पिण्डगतमृदेकांशानुसन्ध्यालम्बनत्वे लौकिकवाक्येन सिद्ध्यति, एवं घटपटादिसत्ताप्रतीतिरपि ब्रह्मसत्तांशानुस्मृत्यालम्बना सदेवेत्यादिवाक्येन सिद्ध्यति, एवमाथर्वणाः "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" (श्वेता० ६।१४) इत्यामनन्तो स्फुटः स्फुरतीत्यादि प्रतीयमानं प्रपंचस्फुरणं ब्रह्मभारूपतदीयशक्त्यंशमावेदयन्ति। न च तत्र स्फुरतीत्यस्य स्फुरणविषयत्वमर्थः सविता स्फुरति भाति प्रकाशत इति प्रयोगैः स्फुरणवत्त्वार्थे पश्यतः घटः स्फुरतीत्यादिप्रयोगे अर्थान्तरकल्पनायोगात्, न च ब्रह्मभारूपस्य स्फुरणस्य प्रतिनियतव्यवहारविषयत्वोपपत्तिः। तथा "एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति" इति पठन्तो वाजसनेयिनो वैषयिकादिसुखवृत्तिषु विषयविशेषासंपर्कादिकारणवशात् तारतम्येनाभिव्यक्तिः परब्रह्मानन्दरूपचिच्छक्त्यंश एव जीवैरास्वादित इत्यावेद्यते। तथा तैत्तिरीया अप्यानन्दमीमांसायां "यदेष आकाश आनन्दो न स्यादिति" (तै० उ० २।७) प्रकृतमेव ब्रह्मानन्दं "स एको मानुष आनन्द" (तै० उ० २।८) इत्यादिसन्दर्भतारतम्यापन्नमानुषाद्यानन्दत्वेनाधीयाना उक्तमर्थमावेदयन्ति। तथा छन्दोगाः प्राणाकाशादिविषयोद्गीथादिविद्याश्चिच्छक्तिविषया निबध्नन्ति तासु विद्यासु "सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशे प्रत्यस्तं यान्ति" (१।१।९।) इति सकलभूतोत्पत्तिलयाधारत्वं तत्तदुपादानत्वप्रतीतेः, कूटत्वे ब्रह्मणि तदयोगात्। "को ह्येवान्यात्कः प्राण्याद्" (तै० उ० २।७) इति श्रुत्यनुसारेण सकलं प्राणसहिते चिदम्बरशक्तिरूपे परब्रह्मणि प्राणाकाशशब्दयोरुपपत्तिश्च ॥ २ ॥

एवं धर्मस्य महिमानं प्रदर्श्य धर्मिणो धर्मस्य कृत्यविभागं दर्शयति—

कर्तृत्वं तस्य धर्मी कलयति जगतां पञ्चके सृष्टिपूर्वे
धर्मः पुंरूपमाप्तः सकलजगदुपादानभावं बिभर्ति ।
स्त्रीरूपं प्राप्य दिव्या भवति च महिषी स्वाश्रयस्यादिकर्तुः
प्रोक्ता धर्मप्रभेदावपि निगमविदां धर्मिवद्ब्रह्मकोटिः ॥३॥

सृष्टिपालनसंहारतिरोधानानुग्रहरूपाणि पञ्चकृत्यानि, तिरोधानानुग्रहौ बन्धमोक्षौ, एतेषु विश्वस्य सृष्ट्यादिषु धर्मी केवलं कर्ता भवति, धर्मस्तु पुरुषवनितारूपेण विभागं प्राप्य पुरुषरूपेण विश्वस्योपादानं भवति, वनितारूपेण धर्मिणः परब्रह्मणः दिव्यमहिषी भवति । ते पुरुषवनिते नास्मदादिवज्जीवकोटिः किन्तु ब्रह्मकोटिरिति वेदान्तसिद्धान्त इत्यर्थः ।

ननु ब्रह्मधर्मस्य ज्ञानानन्देच्छादिगुणरूपस्य वह्निगतदहनशक्तिवद्ब्रह्मगत सृष्ट्यादिशक्तिरूपस्य कथं स्वतन्त्रचेतनत्वं, येन तस्य पुरुषवनितारूपेण विभागः स्यात् । उच्यते । यथैकस्यैव तस्य ज्ञानानन्देच्छाद्यनेकगुणरूपत्वं एवं धर्मिणं प्रति स्वतस्तावद्गुणविशिष्टस्वतन्त्रचेतनत्वमप्युपपद्यते । अत एव "ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्ति स्वगुणैर्निगूढाम्" इति श्वेताश्वतरमन्त्रे (१।३) देवस्य परब्रह्मणः शक्तावात्मत्वविशेषण "अन्योन्तर आत्मानन्दमय" (तै. उ. २।५।१) इत्यानन्दवल्ल्यामात्मत्वानिर्देशश्च, बृहदारण्यके गार्ग्यब्राह्मण पृथिव्यादिषु ब्रह्मलोकान्तेषु पूर्वं पूर्वं प्रत्युत्तरोत्तरस्याधारत्वोक्त्यनन्तरं "कस्मिन् खलु ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्च" इति पुनर्गार्ग्या पृष्टेन याज्ञवल्क्येन "गार्गि मातिप्राक्षीर्मा ते मूर्धा व्यपसदनातिप्रश्नो वै देवतामतिपृच्छसि" इति (बृ० उ० ३।८।९-११) । तत्रात्मत्वावान्तरविशेषरूपदेवतात्वनिर्देशश्च, तत्र हि ब्रह्मलोकानामोतप्रोतत्वं परमाकाशे वर्णनीयं । सा परा देवता गुरूपसदनादिनियममतिक्रम्य तां 'मातिप्राक्षीरिति' खलु तत्र देवतापदवक्ष्यमाणपरमाकाशपदं प्रयुक्तम् । अतो धर्मस्य स्वतन्त्रचेतनत्वमप्युपपद्यत एव ॥ ३ ॥

नन्वस्तु तथा, तयोः पुरुषवनितयोर्ब्रह्मकोटित्वं कुतोऽवसीयत इत्याकांक्षायामाह—

योऽसौ धर्मी स शंभुः स शिव
इति परब्रह्म चेति प्रसिद्धो

या चोक्ता धर्मिणोऽस्याविघटित-
महिषी साम्बिकोमेति विद्या।
यश्चोपादानभूतः पर इति
पुरुषस्त्वेष नारायणोक्त्या
ख्यातः श्रीकूर्मवाक्यैरपि
गमितपदं नारदस्यापि वाक्यैः ॥ ४ ॥

शिवो धर्मी तद्धर्मांशौ उमानारायणौ तावपि ब्रह्मकोटिरित्यत्र गमकानि श्रीकूर्मवचनान्युदाहरिष्यामः। तत्र मन्दरशिखरिणि उमासंरक्षणार्थं विष्णुं नियुज्य देवदारुवनं गत्वा तत्र तपस्विनः स्वतोऽनुगृह्य मन्दरं प्रतिनिवृत्तः शिवस्तत्र गौर्या नारायणेन च सहोपविष्टो देव ऋषिगन्धर्वादिभिः सेव्यमानाङ्घ्रिरास्ते। इति प्रस्तुत्य--

दृष्ट्वा, सिंहासनासीनं गौर्या[१] नारायणेन च।
प्रणम्य देवमीशानं पृष्टवत्यो वरांगनाः॥
कस्त्वं विभ्राजसे कान्त्या केयं बालरविप्रभा।
को न्वयं पुरुषः श्रीमन्[२] पङ्कजायतलोचनः॥
(कूर्म पूर्वाः १५.१४९-१५०)

इति कासांचिद्दे वकन्यकानां प्रश्नमुपन्यस्य शिवस्योत्तरवचांसि दर्शितानि—

अयं (अहं) नारायणो गौरी जगन्माता सनातनी।
विभज्याहं स्थितो देवः स्वात्मानं परमेश्वरः॥
न मे विदुः परं तत्वं देवाद्या न महर्षयः।
एकोऽहं (य) वेदविश्वात्मा भवानी विष्णुरेव च॥
अहं हि निष्क्रियो जातः[३] केवलो निष्कलः परः[४]।
मामेव केशवं देवमाहुर्देवीमथाम्बिकाम्॥ इति।
(कूर्म० पूर्वार्द्ध १५।१५२-१५४)

एवं शिवेन गौरीनारायणयोः स्वाभेदमुक्त्वा तयोः स्वधर्मरूपभेदात्मत्वमनन्तरमेवाविष्कृतम्--

---

१. देव्या–पा०। २. भाति वपुषा–पा०। ३. शान्तः।
४. निष्परिग्रहः।

कूटस्थो ह्यक्षरो[1] वापि योगी नारायणाह्वयः।
तारकः पुरुषो ह्यात्मा केवलं परमं पदम्॥
सैषा महेश्वरी गौरी मम शक्तिर्निरंजना।
शाता सत्या परानंदा परंपदमिति श्रुतिः॥ इति।
(कूर्म० पूर्वार्द्ध १५।१५७-१५८)

अत्र पुराणे सर्वत्र परमपदशब्देन ब्रह्मधर्मरूपा पराशक्तिरेव-व्यवह्रियते अतस्तयोरुभयोरपि परमपदत्वोक्ततया तद्रूपभेदत्व-माविष्कृतम्। तथा पुत्रार्थं कैलासे कृततपश्चरणाय कृष्णाय शिवे-नाभिमतवरे दत्ते गौरीवचनम्--

वत्स जाने तवानन्तां निश्चलां सर्वदाऽच्युत।
अनन्यामीश्वरे भक्तिमात्मन्यपि च केशव॥
त्वं हि नारायणः साक्षात्सर्वात्मा पुरुषोत्तमः।
प्रार्थितो दैवतैः पूर्वं सञ्जातो देवकीसुतः॥
पश्य त्वमात्मनात्मानममलं[2] परमं पदम्।
नावयोर्विद्यते भेद ऐक्यं पश्यन्ति सूरयः॥ इति॥
(कूर्म० पूर्वा० २४।८७-८९)

किंच

कैषा भगवती देवी शंकरार्धशरीरिणी।
शिवा सती हैमवती यथावद् ब्रूहि पृच्छताम्॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ऋषीणां[3] पुरुषोत्तमः।
प्रत्युवाच महायोगी ध्यात्वा स्वं परमं पदम्॥
(कूर्म० पूर्वा० ११।१७-१८)

इति च विष्णोः परमपदत्वेन तदनन्तरं—

या सा माहेश्वरी शक्तिर्ज्ञानरूपाऽतिलालसा।
व्योमसंज्ञा पराकाष्ठा सैव[4] हैमवती शुभा[5]॥
(कूर्म० पूर्वा० ११।२१)

इत्यादिना हैमवतीस्वरूपतत्प्रभाववर्णनपरे श्रीकूर्मवचन-सन्दर्भे—

एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम्।
योगिनस्तत्तु पश्यन्ति महादेव्याः परं पदम्॥
(कूर्म० पूर्वा० ११।४९)

---

१. व्यापी—पा०। २. आत्मीयं। ३. मुनीनां। ४. सेयं। ५. मता।

इति गौर्याः परमपदत्वेन परैव ब्रह्मधर्मभूता पराशक्तिरुक्ता, तथोक्तं मंकणकं प्रति शिवेन विश्वरूपप्रदर्शने कृते—

किमेतद्भगवद्रूपं सुघोरं विश्वतोमुखम् ।
का च सा भगवत्पार्श्वे राजमाना व्यवस्थिता ॥
(कूर्म० उत्तरा० ३४।५९-६०)

इति मंकणकेन पृष्टे शिवेन स्वरूपप्रभावकथनानन्तरं—

मम[1] सा परमा माया प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ।
प्रोच्यते मुनिभिः शक्तिर्जगद्योनिः सनातनी ॥
स एव मायया विश्वं व्यामोहयति विश्ववित् ।
नारायणः परोऽव्यक्तो मायारूप इति श्रुतिः ॥
(कूर्म० उत्तरा० ३४।६४-६५)

इति मत्सकाशे दृष्टा मम शक्तिः सैव नारायणरूपेणापि जगन्मोहयतीत्युक्त्या—

जगदे[2] तदनाद्यन्तं ब्रह्मण्येव व्यवस्थितम् ।
तदात्मकं तदव्यक्तं तदक्षरमिति श्रुतिः ॥
(कूर्म० उत्तरा० ३४।७२)

इति सर्वस्य प्रपञ्चस्याव्यक्ताक्षरशब्दितब्रह्माश्रितत्वमभिधाय-किं तद्ब्रह्मेत्याकांक्षायाम् ।

आत्मानन्दं परं तत्त्वं चिन्मात्रं परमं पदम् ।
आकाशं निष्कलं ब्रह्म तस्मादन्यन्न विद्यते ॥
(कूर्म० उत्तरा० ३४।७३)

इति यत्परमपदाकाशपदाभ्यां प्रसिद्धं तदिह ब्रह्मेत्युक्तं, तस्माच्चेतनाचेतनात्मकप्रपंचकारणादन्यं नास्तीत्युपसंहृतम् । तत्र 'का च साभमत्पार्श्वे" इति वचनं सैव नारायणरूपेणावतिष्ठते सैवपरमाकाशपरमपदरूपा परब्रह्मणः पराशधिरित्येवं तन्महिमप्रख्यापनार्थमिति स्पष्टमेवातो गौरीनारायणयोः ब्रह्मधर्मभूतपरमाकाअपरमपदाख्या चिच्छक्तिरुपाभेदात्वमिति ज्ञायते ।

ननु कूर्मपुराणे प्रथमाध्याय (४२-४४) एव—

अस्ति द्विजातिप्रवर इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ।
पूर्वजन्मनि राजासावदृश्य[3] शंकराभिः ॥

१. तस्य । २. त्रयमे । ३. वधृष्य ।

दृष्ट्वा मां कूर्मसंस्थानं श्रुत्वा पौराणिकीं स्वयम् ।
संहितां मन्मुखाद्दिव्यां पुरस्कृत्य मुनीश्वरान् ॥
ब्रह्माणं च हरं देवं देवानन्यांश्च शक्तिभिः ।
तद्भावान्[1] संस्थितान् बुद्ध्वा मामेव शरणं गतः ॥ इति ॥
अस्यास्त्वंशानधिष्ठाय शक्तिमन्तोऽभवन् द्विजाः ।
ब्रह्मेशानादयो देवाः सर्वशक्तिरियं मम ॥
सैषा सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ।
प्रागेव मत्तः संजाता श्रीकल्पे पद्मवासिनी ॥
(तत्रैव ३७-३८)

इति श्री कूर्मरूपेणापि भगवन्तं प्रति ब्रह्मेशानादिभ्यः स्वयमेव पर इति प्रतिपादितं, कथमुपक्रान्तपरापरभावव्यत्ययेन उपरि प्रतिपादितमिति चेत्, उच्यते। तत्र ब्रह्मणः संहाररुद्रापरत्वं प्रथमाध्याये प्रतिपादितं तयोरेव तत्प्रसादक्रोधप्रभवत्वेन द्वितीयाध्याये प्रतिपादनात्। न तु परमशिवादपि तस्य मूर्तित्रयापेक्षया परत्वं शास्त्रान्तर-प्रतिपादितम्।

तां तां शक्तिं समास्थाय[2] स्वयं देवो महेश्वरः ।
करोति देवान्[3] विविधान् ग्रसते चैव लीलया ॥
इज्यते सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणैर्वेदपारगैः[4] ।
सर्वकामप्रदो रुद्र इत्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥
सर्वासामेव शक्तीनां ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
प्रधाना[5] संस्कृता देवाः शक्तयः परमात्मनः ॥
आद्यः परस्ताद्भगवान् परमात्मा सनातनः ।
गीयते सर्वशक्त्यात्मा शूलपाणिर्महेश्वरः ॥
एनमेके वदन्त्यग्निं नारायणमथापरे ।
इन्द्रमेके परे[6] प्राणं ब्रह्माणमितरे विदुः[7] ॥

---

१. 'मच्छक्तौ' इति पाठान्तरम् ।
२. 'समाधाय' इति पा० ।
३. 'देहान्' इति पा० ।
४. 'नादिभिः इति पा० ।
५. 'प्राधान्येन स्मृता' इति पा० ।
६. 'विश्वान्' इति पा० ।
७. जगुः—पा० ।

ब्रह्मविष्ण्वग्निवरुणाः सर्वे देवास्तथर्षयः ।
एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्ते परिकीर्तिताः ॥
यं यं [1]भावं समाश्रित्य [2]यजते परमेश्वरम् ।
तत्तद्रूपं समास्थाय प्रददाति फलं शिवः ॥
(कूर्म० उत्तरा० ४४।३२-३८)

इति च श्रीकूर्मेण इन्द्रद्युम्नं प्रति ब्रह्मेशानादिस्वभावो वर्णितः, स एव मुमुक्षुः। अतोऽपि ज्ञायते तुरीयः स शिव इति। तदिदमग्रे स्फुटीकरिष्यामः। न च विष्णोः परब्रह्मसंहाररुद्रयोश्च परापरभावोऽभिमतः। किंतु परगोष्ठीन्यायेन लीलया कालविशेषो व्यवस्थितः, अत एव द्वितीयाध्याये—

तिस्रस्तु मूर्तयः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः[3] ।
रजःसत्त्वतमोयोगात् परस्य परमात्मनः ॥
अन्योन्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविनः ।
अन्योन्यं प्रणताश्चैव लीलया परमेश्वराः ॥ इति ।
(कूर्म० पूर्वार्ध २।८६-९०)

तस्माद् युक्तमुपरितनं सर्वं, गौरीनारायणयोः ब्रह्मकोटित्वमपि तत्रैवाविष्कृतम् ।

अस्याः सर्वमिदं जातमत्रैव लयमेष्यति ।
एषैव सर्वभूतानां गतीनामुत्तमा गतिः ॥
एष धाता विधाता च कारणं कार्यमेव च ।
कर्ता कारयिता विष्णुः भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥
भोक्ता पुमानप्रमेयः संहर्ता कालरूपधृत् ।
स्रष्टा पाता वासुदेवो विश्वात्मा विश्वतोमुखः ॥
(कूर्म० पूर्वार्ध १५।१५९, १५५-१५६)

इत्यादिवचनसंदर्भैः एवं तावत्कूर्मराजवचनानि शिवगौरीनारायणाभेदे प्रतिपादितानि ॥

अथ सनत्कुमारसंहितावचनानि तत्रप्रमाणीक्रियन्ते ॥ स्कान्दे सनत्कुमारसंहितायां कांचीमहिमावर्णनं प्रस्तुत्य—

---

१. 'भेदं' इति पा० ।

२. यजन्ति—पा० ।

३. महेश्वराः' इति पा० ।

यत्र देवी भगवती शंकराराधने रता।
अद्यापि लोकरक्षार्थं दृश्यते नाऽकृतात्मभिः ॥
भिक्षमाणं महादेवं ज्ञात्वा यत्र स्वयं शिवा।
शिवानन्दमनाद्यन्तं स्वात्मानं प्रददौ शिवे ॥

इति तस्याः कामाक्ष्याः सन्निधानमुक्त्वा—

तत्पुरीशः पुरा व्यास राजा सिद्धनटोपमः।
काशिराजो यथा काश्यां कांच्यां कांचिवरस्तथा ॥
राजा प्रभाकरो नाम प्रभाकरसमप्रभः।
वैष्णवः सर्वधर्मज्ञः केशवार्चनतत्परः ॥
काशिराजस्य तनया दिवोदासस्य सुव्रता।
प्रिया सा पार्वती देवी विद्यादेहातिनिर्मला ॥
या जगद्रक्षणरता दीनानाथादिपोषिका।

इत्यादिना कांचिपुराधिपं विष्णुभक्तं राजानं अम्बिकाभक्तां तन्महिषीं तयोरिष्टदेवताराधनां च वर्णयित्वा--

पद्मिनी नाम तस्यासीद् भार्या पत्यौ पतिव्रता।
देव्याराधनतत्त्वज्ञा तत्परा तत्परायणा ॥
तैस्तैर्भावैः प्रियतमैः अर्चयन्ती महेश्वरीम्।
पतिव्रतासु नारीषु तत्प्रिया तत्पतीनपि ॥
तेभ्यो मनोरथान् दत्त्वा प्रीणयामास तैश्च सा।
एवं देव्यात्मना चैव स्वरूपेण जनार्दनः।
दम्पत्योरेककार्यत्वादेक एव द्विधार्चितः ॥

इति दंपतीभ्यामाराधितयोः गौरीनारायणयोरैक्यं स्पष्टमुक्तं, तदनंतरं च--

एष नारायणो देवः पुराणपुरुषोत्तमः।
प्रभाकरस्य पद्मिन्या भक्त्या तुष्टो जनार्दनः ॥

इत्युभयोरपि भक्त्या नारायणस्यैव तुष्टत्वोक्त्या -

प्रसन्नः सर्वभावेन तद्भक्त्या वाङ्मनोतिगाम्।
पूजान्ते दर्शयामास स्वात्मानं वेदमूर्धगम् ॥
श्रीभूमिसहितं साक्षाद् गरुडस्कन्धमास्थितम्।

इति नारायणोक्तैव वरदानसन्निधावुक्त्या--

ततस्तु दंपती दृष्ट्वा दिव्येनाप्तेन चक्षुषा।
तदा देव-प्रसादेन क्षीणनिःशेषपातकौ ॥

एवं परमया भक्त्या स्तोतुं तमपि न क्षमौ ।

इत्यादिना तयोर्नारायणप्रसादेनैव पापक्षयादिसकलला-भोक्त्या प्रागुक्तं गौरीनारायणयोरैक्यं दृढीकृतम् । गौर्याश्च निरतिशयानन्दरूपशिवधर्मत्वं न प्रददौ शिवः ।

इति प्राक् प्रतिपादितम् । तेन नारायणस्यापि तथात्वमर्थात् सिद्धम् , तस्य धर्मिरूपशिवाभेदः--

तद्विधानां च सर्वेषां मद्भक्तानां नृपोत्तमाः ।
मुक्तिः करतलस्थैव पुनर्जन्मनिरोधिनी ॥
मत्प्रसादान्न संदेहः किमुताग्रस्थिते मयि ॥

इति तद्वचनाकर्णनात्तद्दर्शनमात्रेण स्वस्य मुक्तिं भवानीं निश्चित्य कृतकृत्यतां मन्वानस्य तत्प्रतिज्ञातमुक्तित्वोपयोगि-काशीवास-पाशुपतव्रतचिकीर्षोत्पादनार्थमशेषोपनिषद्वेद्यं -'न यस्मात् परमं पदम्' ।

अविमुक्तमितिप्रोक्तं साक्षाद्विष्णोः परं पदम् ।
तस्मिन् पाशान् पुरो भित्त्वा शोषयित्वा विदाह्य तान् ॥
प्लावनादमृतीकाराच्छिवत्वस्य प्रभावनात् ।
त्यक्त्वा पशुत्वं मां प्राप्य न कश्चिज्जायते पुनः ॥

इति प्रभाकरं प्रति तद्वचनेन पाशुपतव्रतानुमानलभ्यशिव-प्राप्तिर्मां प्राप्येति स्वप्राप्तित्वोक्त्या स्फुटीकृता । तदनंतरं च--

वेदान्तैरखिलैर्वेद्यो यस्त्वमेव जनार्दन ।
संप्राप्तोऽद्य मया देव किमेतत्परमं पदम् ॥

इति पृष्टे तं प्रभाकरं प्रति--

अपरं च पदं राजन् परमं च पदं मम ।
भोगैश्वर्यप्रसक्तानामपरं प्रोच्यते पदम् ॥
विरक्तानां विमुक्तानामात्यन्तिकलयार्थिनाम् ।
मम ज्योतिर्दिदृक्षूणां शिवं तं सोममीश्वरम् ॥
अपरावर्तनं साक्षात् परमं पदमिष्यते ।
वर्णाश्रमाचारयुतं कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ॥
योगं पाशुपतं युञ्जन् परमभ्येति तत्परम् ।

इत्युक्त्वा ततः--

किं तद्व्रतं कथं कार्यं के पाशाश्छेदनं च किम् ।
शोषणं दहनक्लावममृतीकरणं तथा ॥

को वा पाशुपतो योगः कथं वा शिवभावना।
का मुक्तिः किं च विज्ञानं प्राप्यं यस्मान्न विद्यते॥
कः शिवः कः शिवानंदः प्रसीद परमेश्वर।

इति पृष्टवन्तं तं प्रति तत्पृष्टार्थपरिज्ञानाय "ब्रह्मादयः काश्यां मामुद्दिश्य तपस्यन्ति त्वमपि तत्र गत्वा तपः कुरु, दशवर्षान्ते सन्निधाय तेभ्यस्तुभ्यं चोपदेक्ष्यामि" इति काश्यां तपसि तं नियुज्य तथैव कस्मिन् काले संनिधाय ब्रह्मादिभ्यः प्रभाकर-सहितेभ्यः पाशुपतव्रतादिस्वरूपोपदेशानन्तरं तं प्रभाकरं प्रति द्वादशवार्षिकं पाशुपतव्रतमनुष्ठायाश्वमेधं कृत्वा विश्वेश्वरं दृष्ट्वा दक्षिणामूर्तिसंनिधिमागच्छेत्युपदिश्य--

तत्र द्रक्ष्यसि मां देवं विश्वात्मानं पिनाकिनम्।
सुवशानन्दसहितं वृषराजसमास्थितम्॥

इत्युक्त्वा च स्फुटीकृतः, नारायणस्य शिवाभेदेनैव तदभिन्नायाः गौर्याः शिवाभेदेऽप्यर्थः सिद्धः।

ननु हरिवंशे पारिजातसंहितायां पारिजातप्रार्थनार्थं भगवता दूततयेन्द्रं प्रति प्रेषितेन नानाविधैरुपायैः प्रार्थित इन्द्रो यदा पारिजातं न दातुमैच्छत् तदा तं प्रति भगवन्महिमाप्रख्यापनार्थानि नारदवचनानि पठ्यन्ते--

य एको विश्वमध्यास्ते प्रधानं जगतो हरः।
प्रकृत्या यं परः सर्वं क्षेत्रज्ञं वै विदुर्बुधाः॥
तस्याव्यक्तस्य यो व्यक्तो भागः सर्वभवोद्भवः।
तस्यात्मा प्रथमो देवो विष्णुः सर्वस्य धीमतः॥
प्रकृत्याः प्रथमो भाग उमादेवी यशस्विनी।
व्यक्तः सर्वमयो विष्णुः स्त्रीसंज्ञो लोकभावनः॥
रुक्मिण्याद्याः स्त्रियस्तस्य व्यक्तत्वे प्रथमो गुणः।
अव्यक्ता प्रकृतिर्देवी गुणे देवो महेश्वरः॥
न विशेषोऽस्ति रुद्रस्य विष्णोश्चामरसत्तमाः।
गुणिनश्चाव्ययायाश्च सदारः प्रथितो गुणः॥
नारायणो महातेजाः सर्वकृल्लोकभावनः।
भोक्ता महेश्वरो देवः कर्ता विष्णुरधोक्षजः॥
ब्रह्मा देवगणाश्चान्ये पश्चात्सृष्टा महात्मना।
महादेवेन देवेश प्रजापतिगुणस्तथा॥

एवं पुराणपुरुषो विष्णुर्वेदेषु पठ्यते।
अचिन्त्यश्चाप्रमेयश्च गुणिभ्यश्च परस्तथा ॥ इति ।

अत्र शिवस्यांशो नारायणः प्रकृत्यंशो गौरीति गौरीशिवयोः गौरीनारायणयोश्चाभेदः प्रतिपादितः। नारायणस्य परमशिवाभेदः प्रतिपाद्यत इति प्रतीयते। उच्यते। एतान्यपि वचनानि श्रीकूर्मसनत्कुमारवचनानुरोधेन नेतव्यानि। तन्नयनप्रकारश्चेत्थं तस्याव्यक्तश्चेत्यत्राव्यक्तशब्देन प्रकृतिरूपा चिच्छक्तिरुच्यते, अव्यक्ता प्रकृतिर्देवीत्यग्रे विवरणात्। इह स्त्रीलिङ्गनिर्देशाभावः। तस्येतिहरपरामर्शपदस्यासामानाधिकरण्यात्। तत्सामानाधिकरण्यनिर्देशस्तु चिच्छक्तेर्धर्म्यभेदस्फुरणार्थः। तथा च तस्य हरस्य अव्यक्तचिच्छक्त्यवस्थापनस्य यो व्यक्तो भागः स कीदृशः सर्वभवोद्भवः सर्वकार्योत्पत्तिहेतुः। अनेन सर्गादौ चिच्छक्तेः सकलकार्यवर्गकारणतया व्यक्तोभागः कश्चिदाविर्भवतीति लभ्यते। कारणात्मनाव्यक्तस्य भागस्य संबन्धीति प्रथम आत्मकार्यवर्गस्यावान्तरकारणभूतान् हिरण्यगर्भादीन् अपेक्ष्याद्यश्चेतनः स हिरण्यगर्भादिसकलप्रपंचोपादानभूतो भगवान् विष्णुरिति सर्वस्य विवेकिनो धीमतो मतमिदम्। व्यक्ते भागे कस्मिंश्चिद्विभक्तेऽसति तदव्यक्तभागो यः तन्मूलतयोदितः सा भगवती गौरीति, तस्मात्सर्वमनवद्यम्। एवं शिवस्य धर्मिरूपत्वं गौरीनारायणयोः तद्धर्माव्यक्तभागरूपत्वम्। अतएव त्रयाणां ब्रह्मकोटित्वं च समर्थितम् ॥ ४ ॥

अथ नारायणस्य महिमानं शिवप्राप्तिमिच्छतां तत्समाश्रयणावश्यंभावं च दर्शयति--

तस्यैवाद्यस्य पुंसः परिणतिरखिलोऽप्यम्बरादिर्विकारः
तस्यैवांशो विरिंचावधिरिह सकलोऽप्येष संसारिवर्गः।
प्राप्यं कृत्वैव तस्य प्रपदनममृतस्याद्यमानंदमूर्तिः
स्थानं गर्भस्य जुष्टं तदमृततनयैर्देवदेवैः पुराणैः ॥५॥

हरेरेकस्यैव परिणामो वियदादि सर्वो विकारः। "यच्च किंचिज्जगद्" (ईशोपनि० १) इत्यादिमन्त्रवर्णनात्। न च निरवयवस्य परिणामानुपपत्तिः, यदा तमोमात्रे "प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृता पुराणी" इति धर्मज्ञानस्य प्रसारणोक्त्या परिणामित्वविभावनात्।

ब्रह्ममीमांसायां "कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वेति" (ब्र० सू० २।१।२६) सूत्रेणाकृत्स्नैकदेशविकल्पनया ब्रह्मणो विश्वाकार-परिणामानुपपत्तिमाशंक्य "श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्" (ब्र० सू० २।१।२७) इति सूत्रेण श्रुतिप्रतिपन्नेऽर्थे नैवंभूतकुतर्कविकाश इति समाहितत्वाच्च।

हरिवंशे कैलासयात्रायां--

यत् कारणमाहुस्तद्व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्।
त्रिधाभूतं जगद्योनिः प्रधानं कारणात्मकम्॥
सत्त्वं रजस्तमो विष्णुर्जगदण्डं जनार्दनः।
तस्य कारणमाहुस्त्वां सांख्यास्तत्त्वविदो हरे॥
ततो महान् समुत्पन्नः प्रकृतेर्जन्मकारणम्।
तद्रूपेण भवान् विष्णोः परिणम्याधितिष्ठति॥

इति कृष्णं प्रति शिववचनेन तस्य परिणामे कारणत्वस्फुटीकृतत्वाच्च प्रकृतेर्जन्मकारणं भवान् प्रकृतिरूपेण परिणम्य महदादिकार्यमधितिष्ठति व्याप्नोतीत्यर्थः। तथा सर्वसांसारिको नारायणस्यैवांशः "ममैवांशो जीवलोके" इति स्वारस्यात् तदाश्रयं कृत्वैव शिवस्य दिव्यस्थानं प्राप्तव्यम्।

त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन् न योगी मामुपैष्यति।
पालयैतज्जगत् कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम्॥ (कूर्मपूर्वार्द्ध ९।८६)

इति कौर्मे नारायणं प्रति शिववचनात्। शिवस्य दिव्यं स्थानमानंदमूर्तीत्यादिना विशेषितं तद्धि प्रकृतिमायामहामायाविकारामलिनशुद्धमिश्रप्रपंचातीतं परमशिवादिशक्तिरूपं परमानन्दमयं शिवपुराणादिषु प्रसिद्धम्, "अमृतस्य एतानि ह वा अमृतस्य नामधेयानि" इति अमृतशब्दितस्य शिवस्य तनयैः देवानामपि देवैः पुराणैर्जुष्टं च तत्र अमृततनयैरित्यनेन।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोका यंति पथ्येव सूरेः।
श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥

(श्वेता. उ. २।५)

इति श्वेताश्वतरमन्त्रप्रतिपन्नः तेषां महिमा स्मारितः, अस्य मंत्रस्यायमर्थः–वां युवयोः शिवशक्त्योर्मध्ये पूर्व्यं स्वार्थे यत् प्रत्ययः, विशेष्यतया प्रधानभूतं ब्रह्म शिवरूपं नमोभिर्युंजे युनज्मि छान्दसोऽपि करणव्यत्ययः। शिवस्य सर्वनमस्कारपर्यवसानभूतत्वा-

नमस्कारांकितैः श्लोकैर्भजामीत्यर्थः। नमस्कारश्लोका विशेष्यन्ते। सूरे विदुषः शिवरूपाभिन्नस्य तज्ज्ञानान्मुक्ति प्राप्तस्य मम श्लोकाः वाचकनमस्कारसंदर्भरूपाः अहं श्लोककृदिति मुक्तकृत्यत्वेन श्रुतिप्रसिद्धया पथ्येव पथि हिताः त्वरितनिर्विकारमार्गगमनाः सदश्वा इव वियंति निरर्गलं प्रचारतया निर्गच्छन्ति। पथ्यशब्दात् 'सुपां सुलुगिति' (पा० ७।१।३९) सूत्रेण जस आकारः। विश्वेऽप्यमृतस्य शिवस्य पुत्राः नन्दिकेश्वरादयः परिषदः शृण्वन्ति अमृतस्य पुत्रा विशेष्यन्ते-ये दिव्यानि दिवि भवानि चिदाकाशरूपे नित्यकैलाशे स्थितानि धामानि भवनान्यातस्थुरिति देवदेवैरित्यनेन देवव्रताख्यसामप्रतिपन्नस्तेषां महिमा स्मारितः। तत्र हि पृथिवीषदोंऽतरिक्षसदो दिविषदो दिक्षुसद् आकाशसदश्चेत्येवं सकलजगद्व्यापिनस्ते प्रतिपर्यायाद् द्विवारमावर्तितैर्देवदेवशब्दैः सादरं सकलदेवनियन्तृत्वेन प्रतिपादिताः। तथा शिवपुराणेऽप्युपबृंहितम्--

ते हि साक्षाद्दिविषदो ह्यन्तरिक्षसदस्तथा।
पृथिवीषद इत्येते देवा देवव्रते स्तुताः॥ इति।

पुराणैरित्यनेन "दिव्या गणा बहुरूपाः पुराणाः" इत्यायुष्यसूक्त प्रतिपत्तेः तेषां महिमा स्मारितः। तेषामेतावन्महिमजातं भगवता व्यासेन संगृहीतं--

कामकारकराः सिद्धास्त्रैलोक्यस्य तथेश्वराः।
नित्यानन्दाः प्रमुदिताः वागीशादिपुरस्सराः॥
प्राप्याष्टगुणमैश्वर्यं ये न यान्ति च विस्मयम्।
येषां विस्मयते नित्यं कर्मभिर्भगवान् भवः॥
मनोवाक्कायनिरतान् पाति पुत्रानिवौरसान्।
श्रुतेन ब्रह्मचर्येण तपसा च दमेन च॥
ये समाराध्य शूलांकं तत्सायुज्यं समागताः। इति।

अत्र त्रैलोक्यस्येश्वरेश्वरा इत्यनेन देवदेवत्वं संगृहीतं, वागीशा इत्यनेन श्लोककर्तृत्वं च संगृहीतम्। पाति पुत्रानिवौरसान् इत्यनेन अमृतस्य पुत्रत्वं संगृहीतम्। दिव्या गणा बहुरूपा पुराणा इति मंत्रोक्तबहुरूपत्वं तु प्रागेव तेषां बहुशो घोरशांततपोरूपोक्त्या संगृहीतम्॥ ५॥

अथ गौरीमहिमप्रदर्शनपूर्वकं तस्याः शिवोपासनानियमं दर्शयति--

ख्याताः कोट्यो नवाष्टादशपरममिताः स्थाणुवैकुण्ठवेधः
शक्तीनां यत्कलांशास्त्रिभुवनविषयाः शंकरस्यैव भोग्याः।
या विख्याता कृपाब्धिः श्रुतिशिरसि परब्रह्मविद्याप्रदात्री
साहित्यं सा भवानी भजति नियमतः शंकरोपासनासु६

अत्र सर्वशक्तीनामुमांशत्वेन शंकरभोग्यत्वेन वाराहपुराणवचनानि-

नवकोट्यस्तु चामुंडाभेदा भिन्ना व्यवस्थिताः।
या रौद्री तामसी शक्तिः सा चामुण्डा प्रकीर्तिता॥
अष्टादश तथा कोट्यो वैष्णव्या भेद उच्यते।
या सा तु राजसी शक्तिः पालनी सैव वैष्णवी॥
या ब्रह्मशक्तिः सत्त्वस्था सानन्ता वै प्रकीर्तिता।
एतेषु सर्वभेदेषु पृथगेकैकशो दधे॥
सर्वासां भगवान् रुद्रः सर्वगत्वात्पतिर्भवेत्।
यावन्त्यस्या महाशक्तेस्तावद्रूपाणि शंकरः॥
कृतवांस्तास्तु भजते पतिरूपेण सर्वदा।

इति उमायाः परब्रह्मविद्याप्रदातृत्वं "स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानाम् उमां हैमवतीं" (केनोप० ३।१२) इत्यादि तलवकारोपनिषद्वाक्ये ? "ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्" इत्यादि श्वेताश्वतरोपनिषन्मंत्रे (१।३) च प्रसिद्धम्। शिवोपासनायां तस्याः सहोपासनानियमः-

तस्मात्सह तया शक्त्या हृदि पश्यन्ति ये शिवम्।
तेषां शाश्वतिकी सिद्धिर्नेतरेषामिति श्रुतिः॥

इति शिवपुराणे प्रतिपादितः॥ ६॥

शिवोपासनायाः साक्षान्मुक्तिहेतुत्वमाह--

श्रीमत्कौर्मे च यस्याश्रमपरविषयाभावनोक्ता तृतीया
दिव्यस्थानप्रदात्री सगुणविषयिणी शंकरालम्बना सा।
ये त्वन्ये भावने द्वे सरसिजनयनेनादिशक्त्या च युक्ते
प्रामाण्यात्ते तु तस्याः क्रमिकफलयुते भौतिकं सांख्यमाप्ते॥

श्रीमत्कूर्मपुराणे इन्द्रद्युम्नं प्रति श्रीकूर्मवचनानि--

त्रिविधा भावना राजन् प्रोच्यमाना निबोध मे ।
एका मद्विषया तत्र द्वितीयाऽव्यक्तसंश्रया ॥
अन्या तु सगुणा ब्राह्मी विज्ञेया त्रिगुणातिगा ।[१]
आसामन्यतमा चाथ भावनां भावयेद् बुधः ॥
अशक्तः संश्रयेदाद्यामित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तन्निष्ठस्तत्परायणः ॥
तमाराधय विश्वेशं ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ इति ।

(कूर्मपूर्वार्ध १।८८-९०)

भावनानामत्याश्रमाद्यधिकारित्वं श्रीकूर्मपुराणे द्वितीयाध्याये देवर्षीन् प्रत्युक्तम्--

योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकः सांख्य एव च ।
तृतीयोऽत्याश्रमी प्रोक्तो योगयुक्तोऽनपाश्रितः ॥
प्रथमा भावना पूर्वे सांख्ये त्वक्षर भावना ।
तृतीया चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी ॥ इति ।

(कूर्मपूर्वार्ध २।८३-८४)

अत्याश्रमिणो मुक्त्यर्थं पाशुपतव्रतानुष्ठानपूर्वकं भस्मोद्धूलन-त्रिपुंड्ररुद्राक्षधारणपंचाक्षरीजपादिनिष्ठा चेत्येतत्कूर्मपुराण एव सुशीलं राजानं मोक्षार्थं यतमानं प्रस्तुत्योक्तं--

अथास्मिन्नन्तरेऽपश्यत् समायान्तं महामुनिम् ।
श्वेताश्वतरनामानं कौपीनाच्छादनान्वितम्[२] ॥
तपसा कर्शितात्मानं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् ।
समाप्य संस्तवं शंभोरानंदास्राविलेक्षणः ॥
ववन्दे शिरसा पादौ प्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मे साक्षान्मुनीश्वरः ॥
योगीश्वरोऽद्य दृष्टोऽयं यो[३] हि योगविदांवरः ।
अहो मे सुमहद्भाग्यं तपांसि फलितानि मे ॥
किं करिष्यामि शिष्योऽहं भक्तं मां पालयानघ ।
सोऽनुगृह्याथ राजानं सुशीलं शीलसंयुतम् ॥

---

१. (अन्या च भावना ब्राह्मी विज्ञेया सा गुणातिगा)—पा० ।

२. महापाशुपतोत्तमम् पा० ।

३. भगवान् दृष्टो पा० ।

शिष्यत्वे परिजग्राह तपसा क्षीणकल्मषम् ।
सान्यासिकं विधिं कृत्स्नं कारयित्वा विचक्षणः ॥
तदैश्वरं च संज्ञानं स्वशाखोक्तं हितप्रदम् ।[1]
अशेषपथ[2]सारं तत्पशुपाशविमोचनम् ॥
अन्त्याश्रम इति ख्यातं ब्रह्मादिभिरनुष्ठितम् ।
उवाच शिष्यान् संप्रेक्ष्य ये तदाश्रमवासिनः ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्चैव ब्रह्मचर्यपरायणान् ।
मया [3]प्रदर्शितां शाखामधीत्यैवेह योगिनः ॥
समासते महादेवं ध्यायन्तो निष्कलं शिवम् ।
इह देवो महादेवो रममाणः सहोमया ॥
अध्यास्ते भगवानीशो भक्तानामनुकंपया ।
इहाशेषजगद्धाता पुरा नारायणाह्वयः[4] ॥
आराधयन् महादेव लोकानां हितकाम्यया ।

(कूर्मपूर्वार्ध १३।३१-४२)

इत्यादिना श्वेताश्वतराणां मन्त्रोपनिषदि पशुपाशव्रतनिरूपणं मुक्त्यर्थं योगनिरूपणं च कृतम् यत्तन्मया प्रदर्शितां शाखामित्यनेनोक्तम् । अत्र हि आम्नायते--"तपः प्रभावाद् देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरो विद्वान्" (श्वेता० ६।२१) "अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसंघजुष्टम्" इति "सांख्ये त्वक्षरभावनेति" "द्वितीया व्यक्तसंश्रया" इति च अव्यक्ताक्षरशब्दाभ्यां परब्रह्मणः शिवस्य चिच्छक्तिरुक्ता--

[5]जगदेतदनाद्यंतं ब्रह्मण्येव व्यवस्थितम् ।
तदात्मकं तदव्यक्तं तदक्षरमिति श्रुतिः ॥ (कूर्म उत्तरार्ध ३४।७२)

इति कौर्म एव तस्यात्मव्यक्ताक्षरशब्दस्य व्यवहारदर्शनात् । इयमेव तृतीया सगुणा भावना साक्षात्परमेश्वरदिव्यस्थानप्रदा परममुक्त्युपायभूता च । आद्ये तु भावने तद्द्वारभूते । अतएव चिरं नारायणमेव उपासितवतः इन्द्रद्युम्नस्य द्वितीयभावनाप्राप्ति-

१. (ददौ तदैश्वरं ज्ञानं स्वशाखाविहितं व्रतम् ।)
२. वेद ।
३. प्रवर्तितां ।
४. णः स्वयम् ।
५. त्रयमेत-पा० ।

पूर्वकं तृतीयभावनया निरस्तनिखिलद्वैतजीवभावभिन्ननिर्गुण-ब्रह्मज्ञानसाधनोत्तमयोगप्राप्तिस्ततः परमेश्वरदिव्यस्थानप्राप्तिश्चोक्ता--

संप्राप्य भावनामन्त्यां ब्राह्मीमक्षरपूर्विकाम् ।
अवाप परमं योगं येनैकं परिपश्यति ॥
यं विनिद्रा जितश्वासाः कांक्षंते मोक्षकांक्षिणः । इति ।
(कूर्म पूर्वार्ध १।१०३-१०४)

आनन्दमचलं ब्रह्मस्थानं तत्पारमेश्वरम् ।
सर्वभूतात्मभूतस्थः[१] परमैश्वर्यमास्थितः ॥
प्राप्तवानात्मनो धाम यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वर्णाश्रमविधौ स्थितः ॥
समाश्रित्यान्तिमं भावमायां लक्ष्मीं तरेद् बुधः ।
(कूर्म पूर्वार्ध १।११६-११८)

इति च प्राप्यस्थानस्यापेक्षोत्तमस्थानं नास्तीति च तत्रैव द्वितीयाध्याये दर्शितम्--

प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ॥
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्तताम् ।[२]
अष्टाशीति सहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥
स्मृतं तेषां तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ।
सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद् वै वनौकसाम् ॥
प्राजापत्यं गृहस्थानां स्थानमुक्तं स्वयंभुवा ।
यतीनां यतचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम् ॥
हैरण्यगर्भं तत्स्थानं यस्मान्नावर्तते पुनः ।
योगिनां चामृतस्थानं व्योमाख्यं परमक्षरम् ॥
आनन्दमैश्वरं धाम सा काष्ठा सा परागतिः ॥ इति ।
(कूर्म पूर्वार्ध २।६६-७१)

एवं परमाकाशरूपपारमेश्वरदिव्यस्थानप्राप्त्या तृतीयभावनया निर्गुणयोगसंपादनद्वारा परममुक्तिहेतुत्वं पुराणावसानेऽपि स्पष्टीकृतम्--

---

१. भूतः स ।
२. (गान्धर्वः शूद्रजातीनां परिचारेण वर्तताम् ।)

मया प्रोक्तो हि भवतां योगः प्रागेव निर्गुणः ।
आरुरुक्षुस्तु सगुणं पूजयेत् परमेश्वरम् ॥
(पिनाकिनं त्रिनयनं जटिलं कृत्तिवाससम्)
पद्मासनस्थं रुक्माभं चिन्तयेद्वैदिकी श्रुतिः ।
एष योगः समुद्दिष्टः सबीजो मुनिपुंगवाः ॥
(कूर्म उत्तरार्ध ४४।४१–४३)

इत्यारभ्य "यथाविधि प्रकुर्वाणः प्राप्नुयादैश्वरं पदम्" (तत्रैव ४५) इत्यन्तेनात्र तृतीयभावना विवक्षिततदाद्यभावनाद्वयविषय-विवेचने स्पष्टीकृतम् । अनन्तरमेव--

आद्ये च[1] भावने शुद्धे प्रागुक्ते भवतामिह ।
अत्रापि कथितो योगो निर्बीजश्च सबीजकः ॥
ज्ञानं तदुक्तं निर्बीजं पूर्वं हि भवतां मम ॥
(तत्रैव–४४।४७–४८)

इत्याद्यभावनयोरपि सगुणनिर्गुणविषयत्वेन द्वैविध्यमुक्त्वा सगुणयोस्तयोः--

विष्णुं रुद्रं विरिंचिं वा सबीजं भावयेद् बुधः ।
अथवाग्न्यादिदेवान् तत्परः संयतेन्द्रियः ॥ (तत्रैव ४८)

इति कांश्चन विषयानापाततः प्रदर्श्य--

पूजयेत् पुरुषं विष्णुं चतुर्मूर्त्तिपरं हरिम् ।
अनादिनिधनं देवं वासुदेवं सनातनम् ॥
नारायणं जगद्योनिमाकाशं परमं पदम् ।
तल्लिङ्गधारी नियतं तद्भक्तस्तत्परायणः[2] ॥
एष एव विधिर्ब्राह्मे भावने चेति मे मतिः[3] । इति ।
(तत्रैव ४९–५०)

अत्र बाह्यपूजाया इव आद्यभावनाद्वयस्यापि विषयोक्त्या "पूजयेत्पुरुषं विष्णुम्" इत्यादौ चतुर्भुजत्वादिविशिष्टं विष्णुरूपं तन्मूलं परमाकाशरूपं च विवक्षितमित्यव्यवस्थिते तदनुसारेण "आकाशं परमं पदम्" इत्येतद् द्वितीयभावनाविषयसमर्पकत्वेन प्रत्येकं योजनीयम् । तल्लिगधारी इत्यत्र तल्लिगं द्वितीयाध्याये दर्शितम्—

१. ये चान्ये–पा० ।
२ तदपाश्रयः ।
३. चान्तिके मतः ।

आश्रमो वैष्णवो ब्राह्मो हराश्रम इति त्रयः ।
तल्लिंगधारी [1]नियतस्तद्भक्तजनवत्सलः ॥
ध्यायेत्तथार्चयेदेतान् ब्रह्मविद्यापरायणः ।
सर्वेषामेव[2] लिंगानां शंभोर्लिङ्गमनुत्तमम् ॥
सितेन भस्मना कार्यं ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् ।
यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम् ॥
धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिभिः ।
प्रपन्ना ये जगद्बीजं ब्रह्माणं परमेश्वरम्[3] ॥
तेषां ललाटे तिलकं धारणीयं तु सर्वदा ॥ इति ॥ ७ ॥

(कूर्म पूर्वार्ध २।९८–१०२)

आदिशक्त्युपासनायाः नारायणोपासनाया इव विग्रहविषयत्वे तल्लोकप्राप्तिद्वारत्वापेक्षायां परिशेषाच्छिवधर्मोत्तरादिषु सिद्धमुमाविषयत्वम्, तल्लोकप्राप्तिद्वारत्वं दर्शयति--

विद्वांसः शंकरस्य श्रुतिमतिमहितोपासनावासनाभिर्लब्धस्वान्तप्रतिष्ठा सुदृढमभिधया तं विलोक्यात्मनैव । गोलोकस्योर्ध्वभागादपि परमपदाद्वैष्णवादूर्ध्वदेशे भास्वत्कोटिप्रभं यान्त्यपुनरवगमस्थानमानन्दरूपम् ॥८॥

श्रवणमननयोर्विध्यभावादनियमशंकायां लौकिकप्रामाण्येनैव तयोर्नियमतः प्राप्तिमभिप्रेत्य श्रुतिमतिमहितेति विशेषण श्रवणमननोपासनाभेदविषयत्वात्तद्वासनादार्ढ्येन तत्फलस्य साक्षात्कारस्याभेदसिद्धिमभिप्रेत्य वासनाभिरित्युक्तं, उपासनायाः साक्षात्कारद्वारत्वादभेदविषयत्वयोः इन्द्रद्युम्नं प्रति श्रीकूर्मवचनं--(पूर्वार्ध १।८७)

सर्वसंगान् परित्यज्य ज्ञात्वा मायामयं जगत् ।
अद्वैतं भावयात्मानं द्रक्ष्यसे परमेश्वरम् ॥ इति ।

गोलोकस्योर्ध्वभागे वैष्णवं पदम् इत्यत्र श्रुतिः "[4]'ते ते धामान्युश्मसि गमध्यै गावो यत्र भूरिशृङ्गा आयासः ।" अत्राह 'तदुरुगा-

---

१. सततं ।

२. भक्तानां ।

३. परमेष्ठिनम् ।

४. ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो–पाठा० ।

यस्य विष्णोः परमं पदमवभाति भूरि" (ऋ० १।१५४।६) इति। हे विष्णो तानि तच्छन्दाद्बहुवचनस्य सुपां सुलुगति[1] सूत्रेण शे इत्ययमादेशः। ते तव धामानि स्थानानि गमध्यै गंतु उश्मसि इच्छाम गमध्यै इति गमेर्धातोस्तुमर्थे सेनित्यादिसूत्रेण[2] तुमुन् प्रत्ययार्थे अध्यै इति प्रत्ययः। "उश्मसिति व शंकां लावित्यस्माद्धातो उत्तमपुरुषबहुवचने "इदन्तोमसीति[3]" सूत्रेण अत्र मस इकारागमः संहितोऽदीर्घः। तान्येव धामानि विशिष्यन्ते-यत्र येषु स्थानेषु अयासः अनपायिन्यः, यातेरसुन् प्रत्यये नञ् समासः। भूरिश्रृङ्गाः दीर्घश्रृङ्गाः गावो नद्यादयो गोमातरः सन्ति। अत्राह-एषु स्थानेषु आहेति निपात एवकारार्थः। तत्र सिद्धं उरुगायस्य उरुभिर्महद्गीयमानस्य भूरेर्महतो विष्णोस्तव परमम् अधस्तनं विष्णुलोकापेक्षया उत्कृष्टं परमं पदमवभाति परमशिवलोकस्याधस्ताद् भातीति।

न च ब्रह्मणः स्थानात्तस्य परं स्थानं प्रकाशत इति ब्रह्मलोकात्परत्वेन श्रुतस्य विष्णुलोकस्य कथं गोलोकान्तर्गतत्वमिति शंकनीयम्? गोलोकस्यापि ब्रह्मलोकात् परत्वं पृष्टवन्तं युधिष्ठिरं प्रति तत्र कारणं ब्रह्मवरदानं भीष्मेणोक्तं—

येऽर्चयन्ति त्वद्भक्ता गोलोकं यान्तु ते नराः।
मल्लोकोपरि वत्स्यन्ति भवत्यारोहिणी प्रजाः॥ इति।
मल्लोकोपरि गोलोको भविता सुरभेः सदा।
त्वत्सुता त्रिजगद्भूत्यै गावो भूम्यां चरन्त्विह॥ इति।

इति हरिवंशे गोवर्धनोद्धरणे गाः संरक्षितवन्तं कृष्णं प्रति शक्रवचनेनापि ब्रह्मलोकादुपरि गोलोकः तस्योपरिभागे वैष्णवं परमंपदमिति प्रतिपादितम्।

स्वर्गादूर्ध्वं ब्रह्मलोको महर्षिगणसेवितः।
तस्योपरि गवां लोकः साध्यास्तं पालयन्ति हि॥
त्वं हि सर्वगतः कृष्ण महाकाशगतो महान्।
उपर्युपरि तत्राज गतिस्तव तपोमयी॥

---

१. सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः। पा० ७।१।३९।

२. तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन् तवैतवेङ्तवेनः। पा० ३।४।९॥

३. इदन्तो मसि पा० ७।१।४६॥

यां न विद्म वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि पितामहम् ।
यां योगनिरता विप्रा भजन्ते ब्रह्मवादिनः ॥ इति ।

साध्याः "यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः" इति पुरुषसूक्त-मंत्रोक्ताः देवाः (ऋग्वेद १०।९०।१६) उपर्युपरि गवां समीप एवोपरिभागे। शिवधर्मोत्तरे तु शास्त्रे पंचमेऽध्याये ब्रह्मलोकात्परं विष्णुलोकं प्रकृत्या—

ज्ञेयं विष्णुपदादूर्ध्वं दिव्यं शिवपदं महत् ।
भोगसंस्थानमतुलं कर्मयोगरतात्मनाम् ॥
सहभूमिसुविस्तीर्णैः सूर्यकोटिसमप्रभैः ।
अप्रमेयगुणैर्दिव्यैर्विमानैः सर्वकामगैः ॥
असंख्येयैस्तदप्राप्तं सर्वप्राण्युपकारकैः ।
रुद्रलोकमिति प्रोक्तमशेषगणसंयुतम् ॥
सर्वेषां शिवभक्तानां तत्पदं परिकीर्तितम् ।
रुद्रक्षेत्रे मृतानां च जंगमस्थावरात्मनाम् ॥

इत्यादिवचनैरपरं शिवलोकं वर्णयित्वा—

इत्येतत्परमं प्रोक्तं श्रीमच्छिवपुरं महत् ।
देहिनां कर्मनिष्ठानां पुनरावसथं स्मृतम् ॥

इति शिवप्रसङ्गं समाप्य

ऊर्ध्वं शिवपुराज्ज्ञेयं स्थानं शैवमनुत्तमम् ।
नित्यं परमशुद्धं च स्कन्दोमाशंकरात्मकम् ॥

इत्युक्त्वा पुनर्द्वादशाध्याये—

विष्णुलोकाच्च परतः श्रीमच्छिवपुरं महत् ।
द्वात्रिंशत्कोटिविस्तीर्णं द्विगुणेन समुच्छ्रितम् ॥

इत्यादिना महता प्रपंचेन परं शिवपुरं वर्णयित्वा तत्र सर्वतोभद्रमणिमण्डले शिवस्यावस्थानमुक्त्वा—

ईश्वरायतनस्याग्रे श्रीमान् धर्मो वृषः स्थितः ।
यत्र वीरव्रतस्तत्र नित्यं गोष्ठान्तरस्थितः ॥
गोलोकः शिवलोकश्च एक एव ततः स्मृतः ।
ये गुणा रुद्रलोकस्य गोलोकस्यापि ते गुणाः ॥

इत्यपरशिवलोकान्तर्गतगोलोकमभिधाय—

शिवलोकात्परं ज्ञेयं मण्डपस्यावरुष्टकम् ।
अण्डादूर्ध्वं पुनर्ज्ञेयं प्रकृतेर्मध्यतः स्थितम् ॥

ब्रह्मणः परमं स्थानं पद्मरागसमप्रभम् ।
ब्रह्मलोकात्परं ज्ञेयं विष्णोः स्थानं सनातनम् ॥
इन्द्रनीलप्रतीकाशं महाभोगैरलंकृतम् ।
विष्णुलोकात्परं स्थानं कुमारस्य महात्मनः ॥
स्वच्छमौक्तिकसंकाशं वरभोगसमन्वितम् ।
स्कन्दस्थानात्परं स्थानं उमादेव्याः प्रकीर्तितम् ॥
तप्तचामीकरप्रख्यमशेष - गुण - संयुतम् ।
उमास्थानाच्च परतः स्थानमाद्यमुपापतेः ॥
दिनकृत्कोटिसंकाशं सर्वकामसमन्वितम् ॥

इति ब्रह्माण्डादूर्ध्वं स्कन्दोमाशंकरलोकवत् ब्रह्मविष्णुलोकावप्युक्तौ । स्कान्दे काशीखण्डे उमालोकात्परो गोलोको दर्शितः

शिवलोकाच्च गोलोकादुमालोकाच्च सर्वतः ।
कुमारलोकाद्वैकुण्ठो सत्यलोकात्समंततः ॥
तपोजनमहद्भ्यश्च सर्वे स्वर्लोकवासिनः ।
भुवर्लोकाच्च भूलोकात्तथा पातालतोऽखिलात् ॥
स्नातुं माघे समायान्ति प्रयागमरुणोदये[1] ॥ इति ।

अयमेव गोलोकोऽत्र विवक्षितः ॥ इदं श्रीकण्ठाचार्यविरचितब्रह्ममीमांसाभाष्याभिमतं रहस्यार्थजातं संक्षिप्तम् ॥ अत्र मूलानि भाष्यवचनान्युदाहरिष्यामः ॥

तत्र धर्मं ज्ञानरूपायाः शक्तेः सकलधर्मिगुणरूपत्वं 'सर्वत्रप्रसिद्धोपदेशादित्यधिकरणे (ब्र सू. १।२।१) दर्शितम् । सकलचिदाचित्पंचमहाविभूतिरूपा महासंविदानन्दसत्ता देशकालादिपरिच्छेदशून्या स्वाभाविकी पराशक्तिः परब्रह्मणः शिवस्य स्वरूपं च गुणश्च भवति । तद्व्यतिरेकब्रह्मणः सर्वज्ञत्व-सर्वशक्तित्व-सर्वका-

---

१. पाठान्तरम्

शिवलोकाद् ब्रह्मलोकादुमालोकात् परात्पुनः ।
कुमारलोकाद् वैकुण्ठात् सत्यलोकात् समन्ततः ॥
तपोजनमहर्भ्यश्च सर्वे स्वर्लोकवासिनः ।
भुवोलोकाच्च भूर्लोकान्नागलोकात्तथाऽखिलात् ॥
अचला हि भवन्मुख्याः कल्पवृक्षादयो नगाः ।
स्नातुं माघे समायान्ति प्रयागमरुणोदये ॥ इति
(स्कन्द पु० काशीखण्ड ७।५५-५७ ॥)

रणत्व-सर्वनियंतृत्व-सर्वोपास्यत्व-सर्वानुग्राहकत्व-सर्वपुरुषार्थहेतुकत्वादिकं सर्वगतत्वं च संभवति। किं च महेश्वर-शिव-महादेव-रुद्रादिपरमाख्याभिधेयत्वं च न संभवतीति तस्याः सकलजगदाधारपरमाकाशरूपत्वं जन्मादि सूत्रे (ब्र. सू. १।१।२) "आकाशशरीरं ब्रह्म" (तैत्ति० ।१।६।३।) इति श्रुतिव्याख्यायां दर्शितम्॥ आकाशत इत्याकाशश्चिदंबरमुच्यते, न भूताकाशं विश्लेषाभावात् निखिलजगदण्डषण्डबुद्बुदनिकुरंबजलस्थानीयपरमप्रकृतिरूपा परमशक्तिर्हि चिदम्बरमुच्यते। तत्स्वरूपं ब्रह्माकाशशरीरम्, परमप्रकृतित्वं चिदाकाशस्य "सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यन्ते, आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति (छां. उ. १।९।१)। आकाशो ह वै नामरूपयोर्निर्वहिता" (छां. उ. ८।१४।१।) इत्यादि श्रुतिसिद्धमिति दहराधिकरणे (ब्र. सू. १।३।१४) "अथ यदयमात्मा स सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसंभेदाय" इति श्रुतसकलजगदाधारभावदहराकाशरूपत्वमस्याः प्रदर्शितं॥ नहि दहराकाशमध्यवर्ती परमेश्वर उपास्यः किंतु दहराकाश एव, दहराकाशे परमेश्वरधर्माणामपहतपाप्मत्वादीनां संबन्धप्रतीतेः दहराकाशत्वमपि अस्य चिदम्बररूपतयेति न विरोध इति तस्याः परब्रह्मपरमानन्दरूपत्वमानंदमयाधिकरणे (ब्र. सू १।१।१२) दर्शितं, परमाकाशरूपः प्रकृत्यात्मानंदमय इति श्रूयते न 'विश्वाधिकं निमित्तं परं ब्रह्म यत्सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मे'त्युच्यते (तैत्ति. २।१।१)। "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" (तैत्ति. २।१।१) इति आकाशादिः प्रपंचप्रकृतित्वेन श्रुत आनंदमयः, परमाकाशरूपत्वमप्यस्य 'यदेष आकाश आनन्दो न स्यादि' (तैत्ति. २।७) त्यतोऽवगम्यते। ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठेति (तैत्ति. २।५) ब्रह्म चानंदाकाशस्याधारत्वेनावगम्यते। अतएव 'आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्" (तैत्ति. ३।६) "आनंदादेव खल्विमानि भूतानि जायंते" (तैत्ति. ३।६) इत्यादिना सकलभूतप्रकृतित्वेनाभिधीयते। तत्रानंदो ब्रह्मेत्यानंदस्य ब्रह्मव्यपदेशस्तु ब्रह्मधर्मत्वेन तदभेदात्। "सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योम्नि प्रतिष्ठिता (तैत्ति. ३।६) इति ब्रह्मधर्मस्वरूपे परमानंदरूपे प्रपंचप्रकृतौ परमशक्तिपर्याये चिदात्मनि परमव्योमनि वारुणी विद्या समाप्तेत्युच्यते। ततो ब्रह्मधर्मस्वभावात् प्रकृत्यात्मा परमाकाशरूपा परमाशक्तिरानंदमय इत्युच्यते, तद्धर्मित्वेन प्रतिष्ठेत्यु-

च्यते परब्रह्मेति। इदमेव मतमाचार्याणामभिमतम्। नत्वानंदमयः परब्रह्मेति मतमिति शिवादित्यमणिदीपिकायां शिवानंदलहर्यां च निपुणतरमुपपादितमस्माभिः। जगत्सत्तास्फूर्त्योः ब्रह्मचिच्छक्त्यंशरूपत्वमारंभणाधिकरणे व्यतिरेकमुखेन दर्शितं, सच्चिद्रूपेण शिवेन यदि न व्याप्तं जगत्तदा सत्तास्फूर्तिभ्यां विना कृतं कथमस्ति स्फुरतीति च दृश्यते। अतो मृदा घटादिकमिव कारणेन शिवेन कार्यमिदं व्याप्तमिति।

अत्र यद्यपि धर्मिणः शिवस्यैव जगत्सत्तास्फूर्तित्वमुमेति भाति, तथापि धर्मद्वारकमेव तस्य तद्विवक्षितमिति ज्ञातव्यं, मृदा घटादिकमिवेति परिणामि दृष्टान्तानुगुण्यात्तदव्यक्तमाह इति" (ब्र. सू. ३।२।२३) सूत्रभाष्ये प्रत्यक्षादिना सिद्धा सत्ता न ब्रह्मेत्युक्तत्वाच्च, तस्याः सकलजगदानंदरूपत्वं '[1]अभावं बादरिरि' त्यधिकरणे परप्रकृतिरूपा परसत्ता प्रकाशानंदसमरसा परमशक्तिर्हि परब्रह्मणः स्वरूपभूता परमाकाशा उच्यते इति तां प्रकृत्य प्रदर्शितम्॥ "को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद्यदेष आकाश आनंदो न स्यात्, एष ह्येवानंदयति यो रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दीभवति" (तै० उ० २।७) इति सर्वानुभवविषयत्वमस्याः श्रूयते। तथा च "स एको मानुष आनंद" इत्यारभ्य "स एको ब्रह्मण आनंद (तैत्ति २।८)" इति ब्रह्मपर्यन्त उपाधितिरोधानादानंदाविर्भावस्तारतम्येन श्रूयत इति। तथा आकाशोपास्तेश्चिच्छक्तिविषयत्व 'माकाशस्तल्लिङ्गा दि'त्यधिकरणे (ब्र. सू. १।१।२२) न भूताकाश इति पूर्वपक्षनिराकरणं कृत्वा भूतग्रहणप्रयोजनं प्रश्नोत्तराभ्यामाविष्कृतं, भूताकाशइत्युपपदग्रहणेन किमिति चेत्, परमाकाशपरमप्रकृतिरूपस्य सर्वभूतकारणत्वप्रयोजनं, तर्हि परमेश्वर इति कथं निर्णयः? तदभेदादिति सिद्धमिति जन्मादिसूत्रे (ब्र सू. १।०।२) एतदधिकरणविषयवाक्यस्याकाशोऽर्थान्तरत्वादिव्यपदेशाद (ब्र. सू. १।१।२१) त्यधिकरणविषयवाक्यस्य च चिकच्छक्तिविषयत्वेन लिखितत्वादयमप्यर्थः स्पष्टः। एवं सर्वत्र ब्रह्मलिंगवन्निर्देशाकाशपदयुक्तवाक्यानां चिच्छक्तिविषयोक्त्या "गायत्री वा इदं सर्वं भूतम् (छां. ३।१२।१) इत्यादिना निरूपितायाः गायत्र्युपासनाया अपि तद्विषयत्वं सूचितं, अत्रापि "एतद्वै ब्रह्मेति इदं वावतरत्। योऽयं

---

१. अभावं बादरिराह ह्येवम्॥ ब्र सू ४।४।१०॥

बहिर्धा पुरुषादाकाश' इति प्रकृतगायत्रीपरामर्शिततच्छब्दसमानाधिकरणतया तद्विषयस्य ब्रह्मशब्दस्याकाशशब्देन सामानाधिकरण्यात्। तथा 'अत एव प्राण' (ब्र. सू. १।१।२३) इत्यधिकरणनिर्णीता प्राणोपासना अपि तद्विषया, तत्रापि "सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते" (छा. उ. १।११।५) इति सर्वभूतोत्पत्तिलयकारणत्व-लिङ्गसद्भावेन सर्वलोकगत्या आकाशविशेषणात्। 'आकाशस्तल्लिङ्गात्, अतएव प्राण' इति (ब्र सू. १।१।२२, २३) सूत्रयोर्न्यायसाम्येन समानविषयत्वं सूचयितुं भाष्ये युगपल्लिखितत्वाच्च। "सत्यात्मप्राणारामम्" इति (तैत्ति १।६।४) श्रुतौ प्राणशब्दोऽस्य सकलाधारभूतचिद्स्वरशक्तिरुच्यते। स्वरूपभूतायास्तस्यामेव आरामो यस्य तत्प्राणाराममिति जन्मादिसूत्रे (ब्र. सू. १।१।२।) चिच्छक्तिपरतया व्याख्यातत्वाच्च तथा धर्मिणः सकलजगत्सर्गरक्षासंहरणतिरोधानानुग्रहरूपपंचकृत्यकारित्वं जन्मादिसूत्रे (ब्र. सू. १।१।२) "यत्सर्वज्ञत्वादिविशिष्टमष्टाभिधानाधिकरणं शिवतत्त्वं तदेव जगत्कारणं ब्रह्मेत्युच्यते" इत्यादिना प्रपञ्चितम् चिच्छक्तेः पुरुषरूपप्राप्त्या सकलजगदुपादानत्वं प्रकृत्यधिकरणे (ब्र. सू. १।४।७ मम अधिकरणं)—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतेन व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥
(श्वेताश्व० ४।१०।)

इति श्रवणान्मायायाः सकलप्रकृतित्वं तद्विशिष्टत्वं महेश्वरस्य तदवयवभूतेन चिच्छक्त्येकत्वभूतेन भासत्वदशायां पुरुषसंज्ञकेन सकलजगद्व्यापिनश्चावगम्यत इति मायिनः परमेश्वरात् सकलचेतनाचेतनप्रकृतिः पुरुषोऽभिव्यक्तो भवति। तद्रूपादीश्वराद्व्यक्तचतुर्मुखाद्युत्पत्तिः, तथा च श्रुतिः-तथा च ईश्वरस्य पुरुषरूपत्वमभिधत्ते "पुरुषो वै रुद्रः" (महानारा. उ. १०।११) इति प्रदर्शितम्। अत्र श्रुतिगतमवयवभूतेनेति पदमंशभूतेनेत्यनेन व्याख्यातं, तदपि महेश्वरस्य न साक्षात् किंतु तद्धर्मं चिच्छक्त्यंशद्वारमिति चिच्छक्तिशकलेनेत्यनेन विवृतमंशेनेति वक्तव्ये शकलेनेत्युक्तिः।

विश्वोत्तरोत्तरविचित्रमनोरथस्य
यस्यैकशक्तिशकले सकलः समाप्तः।

अध्वानमध्वपतिमध्वविदो वदंति
तस्मै नमः सकललोक विलक्षणाय" ॥ इति ।

शिवपुराणवचनस्य स्वोक्तार्थविषयत्वद्योतनार्थमव्यक्तचतुर्मुखाद्युत्पत्तिरिति जडाजडसकलप्रपंचोपादानत्वमुक्तम् । स्त्रीरूपप्राप्त्या परब्रह्ममहिषीत्वं बहुषु स्थलेषु "ऋतं च सत्यम्" (महानारा. १०।१०) इति मंत्रार्थकथनैः कृष्णपिंगलशब्दगृहीततया व्याख्यातं, पुरुषस्य नारायणस्य ब्रह्मकोटित्वं ईक्षतिकर्माधिकरणे प्रपंचाकारत्वमन्तरेण यन्निरतिशयानंदस्वभावं विष्णोः परमं पदं तदेव शिवाभिधेयं परं ब्रह्मेति विष्णुशिवयोरुपादाननिमित्तयोरवस्थानभेदमंतरेण स्वरूपभेदो नास्तीति च दर्शितम् । "सर्वो वै रुद्र" (महना. १०।११) इति परमेश्वरस्य सर्वात्मकतानिधानमुपक्रम्य पुरुषस्य नारायणस्य हि सर्वात्मत्वमुपादानत्वात् कथमस्य सर्वात्मकत्वमित्याशंक्याह–"पुरुषो वै रुद्रः" (महाना. १०।११) इति । "पुरुषस्य विद्महे सहस्राक्षस्य महादेवस्य धीमहि" इति च पुरुषोऽपि परमेश्वरस्य महाविभूत्यात्मा जगदाकार इति निरूपितम् इति । उमायाः परब्रह्मकोटित्वं तत्रैवाधिकरणे ऋतं सत्यमिति मंत्रार्थविवरणे 'पराशक्त्या प्रणववर्णव्यत्यासरूपोमाशब्दवाच्यया शबलाकारत्वेन कृष्णपिंगलमित्यनेन' वाक्येन दर्शितम् ॥

अत्र हि परब्रह्मलिंगं प्रणववाच्यत्वमुमाया अप्यस्ति । तत्र प्रणवमात्राणामादावुकारस्ततो मकारस्तदनन्तरमकार इति व्यत्ययावस्थानमात्रं दर्शितम् । अयमर्थो लिंगपुराणे शिवेनाबिकायै वर्णितः—

त्वदीयः प्रणवः कश्चित् मदीयः प्रणवस्तथा ।
त्वदीयो देवि मात्राणां व्यस्तीभूते न संशयः ॥
अकारोकारमकाराः मदीये प्रणवे स्थिताः ।
उकारं च मकारं च अकारं च क्रमेण तु ॥
त्वदीयं प्रणवं विद्धि त्रिमात्रप्लुतमित्युत ।

इति वचनबलादकारस्य प्लुतभावः ।

तस्मादों बीजमुमाशक्तिरित्यादौ प्लुतोच्चारणं कार्यं, लोके तु स्त्रीत्वविवक्षायां डाप् न दीर्घान्तत्वमुपपद्यते । नारायणस्य परिणामितयोपादानत्वं प्रकृत्यधिकरणे (ब्र. सू. १।४।२३) परिणामादिसूत्रभाष्ये (ब्र. सू. १।४।२६) निर्विकारस्य शिवस्य परिणामासंभवाशंकायां यथा निमित्तस्य प्रकृतित्वेन विकारादिस्पर्शः, तथा परि-

णामः संभवतीति तत्परिहारं प्रतिज्ञाय, कोऽयमपूर्णपरिणामः कुतूहलं नः तच्छ्रवणे, विविच्यतामिति शंकामुद्भाव्य, शृणु, विवेचयाम इत्यादिना सूक्ष्मत्वान्निर्विकारस्य शिवस्य पुरुषावस्थाद्वारतः परिणाम इत्युपादानेन दर्शितं तथा प्रतिषेधादित्यधिकरणे- (ब्र. सू. २।३।७) ष्युक्तम् । सर्वज्ञात् सर्वशक्तिमतः परब्रह्मणः शिवात् विश्वाधिकात् प्रथमं प्रकृतिः पराशक्तिः प्रादुर्भवति । सा प्रथमसम्भोक्तृत्वदशायां पुरुष इत्युच्यते । यः सहस्रशीर्षा पुरुष (ऋ. १०।९०।१) इत्युच्यते । तदा ब्रह्मण एव शिवात् सकलचेतनाचेतनप्रपंचपरिणाम इति जीवानां स्वरूपेण न तद्विकारत्वं किंतु धर्मज्ञानसंकोचविकासादिविशिष्टतया स्वरूपस्तु तदंशा इति "अंशो नानाव्यपदेशात्" (ब्र. सू. २।३।४३) इत्यधिकरणभाष्ये प्रपंचितम् । नारायणाश्रयणस्य शिवपदप्राप्तिसाधनत्वं पांचरात्राधिकरणे (ब्र. सू. २।२।८ मं अधिकरणं) पांचरात्रप्रामाण्यसाधनानंतरं शंकोत्तराभ्यां प्रदर्शितम् ।

ननु "पुरुषो वै रुद्रः" (महाना. १०।११) इत्यादिश्रुत्या परमेश्वर एव पुरुषो वासुदेवः तज्ज्ञानाराधनादिकमपि क्रमेण परमेश्वरपदमभिसाधनमिति श्रूयते, तदाराधनप्रतिपादकस्य पांचरात्रस्याप्रामाण्ये तस्यानाराध्यत्वप्रसंग इति चेत्, श्रुतिविरोधात्तस्याप्रामाण्येऽपि तस्य का हानिः, श्रुतिप्रसिद्धमार्गेण तदाराधनसंभवादिति "देवदेवैर्जुष्टत्वमाद्यस्थानस्य ते हि साक्षादिविषद" इत्यादिवचनोदाहरणेन सूचितम् । तस्य परब्रह्मशक्तिरूपपरमानन्दत्वं विशेषं च 'दर्शयतीति' सूत्रभाष्ये (ब्र. सू. ४।३।१६।) प्रपंचाकारावस्थितस्यापरमुत्कृष्टं पदं स्वरूपं परमाकाशरूपं परमानंदलक्षणं शिवस्य परब्रह्मणः पदमेव । यत्रासौ पुराणनिहितात्मा प्रपंचाकारोऽपि न संसरतीति वैष्णव्याद्यपरशक्तिविशेषाणामुमांशाभेदत्वम 'अप्रतीकालंबनान्नयति' सूत्रभाष्ये (ब्र. सू. ४।३।१५) सर्वज्ञतया मनोवाग्विपर्यासरहितं स्वशक्तिमरीचिभिः सकलजगत्पूरके स्वाविभक्तया परप्रकृतिरूपया परमानंदचिदेकरूपपरमाकाशलक्षणया स्वावस्थाभेदपरमचेतननारायणाभिव्यक्तहिरण्यगर्भादिसकलकार्यप्रपंचया परशक्त्योमया शबलितरूपं निर्विकारं त्रिलोचनं परंब्रह्म सर्वोत्तरमिति । अत्र स्वशक्तिमरीचयः स्वशक्तेः परमप्रकाशरूपायाः मरीचयः तदंशभूताः वैष्णवादिशक्तिविशेषा विवक्षिताः, 'सर्वत्रप्रसिद्धोपदेशात्' (ब्र. सू. २।२।१) इत्यधिकरणे शिवस्य

सर्वानुग्राहकत्वादिधर्माणां शक्त्यधीनत्वप्रतिपादनात्। तस्याः श्रुतिसिद्धं परब्रह्मविद्याप्रदातृत्वं सूचितम् बहुषु स्थलेषु—

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकंठं प्रशांतम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षि तमसः परस्तात् ॥
(कैवल्यो. ७)

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्।
अम्बिकापतये उमापतये पशुपतये नमो नमः ॥
(महाना. १०।१०)

इति कैवल्योपनिषदादिमंत्राणामुदाहरणात् तस्याः शिवसहोपासना-नियमः सूचितः। शिवोपासनायाः साक्षाद्दिव्यस्थानप्रदातृत्वं प्रथमसूत्र-मारभ्य ततः तत्र बहुधाप्रतिपादितम्, तस्याः साक्षात्कारद्वारत्वं 'विकल्पो विशिष्टफलत्वात्' (ब्र. सू. ३।३।५९)। 'आप्रायणा त्तत्रापि हि दृष्टम्' (ब्र. सू. ४।१।१२) इत्यधिकरणयोरुक्तम्। उपासनासाक्षात्कारयोः शिवजीवाभेदविषयत्वम् 'आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति चेत्यधिकरणे' (ब्र. सू. ४।१।३) वर्णितं, उमानारायणोपासनयोः परम्परया दिव्य-स्थानप्राप्तिहेतुत्व 'अप्रतीकालंबनान्नयतीति' सूत्रभाष्ये दर्शितम्। "ते ब्रह्मलोके तु परांतकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे" इति श्रुतेः (महाना. ८।१५) परब्रह्मणः शिवस्य परमविभूतित्वेन ये विष्णुमुपासते ते तदवस्थत्वात् प्राक् ब्रह्मशब्दवाच्यस्य लोकं प्राप्य प्रादुर्भूतविभूतयः परांतकाले परमदेहावसाने परामृतं शिवं प्राप्य मुक्ता भवन्तीति विष्णूपासकानामर्चिरादिना विष्णुपदप्राप्तिपूर्वकविलम्बेन शिवपदप्राप्ति-रिति नारायणोपासनायामुक्तमिदम् अम्बिकोपासनायामपि तुल्यं न्याय-साम्यात्।

कन्यारूपां तु मां शांतां सूर्यकोटिसमप्रभाम्।
ध्यायमानः सदा भक्त्या देव्याः स्थानमवाप्नुयात् ॥

इति शिवधर्मोत्तरे तदुपासनायास्तल्लोकप्राप्तिद्वारकत्वोक्तत्वात् शिवोपासनाद्वारकत्वस्याप्युपलक्षणम्।

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥
(श्वेताश्व० ६।२०)

इति मंत्रभाष्ये बहुषु प्रदेशेषूदाहृतत्वाद्दिव्यस्थानस्य विष्णुलोका-त्परत्वं 'साम्परायाधिकरणे' (ब्र. सू. ३।३।२७) दर्शितम्। विष्णुपद-संबधिनी विरजानदी प्राकृतप्रपंचसीमावधिः। तदनुप्रवेशप्रक्षीणसर्व-

क्लेशाः योगिनो विष्णुपदादूर्ध्वमप्राकृतं शिवपदं परमानन्दमनुप्रविशन्तीति। अत्र विष्णुलोको गोलोकान्तर्गत एव विवक्षितः, न तु परमशिवलोकान्तर्गतः, परशिवलोकप्राप्तानां पुनः संसरणाभावस्तु अनावृत्त्यधिकरणे (प्र. फ. ४।४।२२)

दिनकृत्कोटिसंकाशं स्थानमाद्यमुपापतेः।
सर्वकामसमायुक्तं विशुद्धं नित्यमक्षयम्॥
संप्राप्य तत्पदं दिव्यं समस्तक्लेशवर्जितम्।
सर्वज्ञाः सर्वगाः शुद्धाः परिपूर्णा भवन्ति च॥
विशुद्धकार्यकरणाः परमैश्वर्यसंयुताः।
सदेहाश्च विदेहाश्च भवन्त्यात्मेच्छया पुनः॥
ये संप्राप्ताः परं स्थानं ज्ञानयोगरताः नराः।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरसंसारमंडले॥

इत्यादिवचनैर्व्यवस्थापित इति सर्वं समंजसम्॥

आमथ्य भाष्यदुग्धाब्धिमाप्तं रत्नत्रयं यतः।
शंभुर्गौरी हरिश्चेति तच्च सम्यक् परीक्षितम्॥

॥ इति श्रीमद्भरद्वाजकुलजलधिकौस्तुभश्रीमदद्वैतविद्याचार्य
श्रीविश्वजिद्याजिरंगराजाध्वरिसूनोः श्रीमदप्पयदीक्षितस्य
कृती रत्नत्रयपरीक्षा समाप्ता॥

परिशिष्ट–२

पद्यप्रतीकानुक्रमः

श्लोकप्रतीक	श्लोकसंख्या	श्लोकप्रतीक	श्लोकसंख्या
अत्यन्तार्ति	३२	त्वामेवैकं	२३.
अद्यैव त्वत्	१५	दासोऽस्मीति	२०
अन्तर्वाष्पा	३९	ध्यातो यत्नात्	१८
अर्कद्रोण	८	ध्यायन्तस्त्वां	६
आत्मार्पण	५०	न किंचिन्मेने	४७
आनन्दाब्धेः	४	न त्वा जन्म	३६
आलेपनं	४३	नाहं रोद्धुं	१०
आलोच्यैवं	२९	पापिष्ठोऽहं	२८
इन्द्रं मित्रं	३	प्राणोत्क्रान्ति	१४
उत्पद्यापि	७	ब्रह्मादीन् यः	१७
उदरभरण	४८	ब्रह्मोपेन्द्र	२१
उल्लंघ्याज्ञां	११	बलमबल	४५
एकोऽसि	२४	भक्ताग्रयाणां	१९
एतावन्तं	३३	भिक्षावृत्तिं	४२
कर्मज्ञान	२२	भुङ्क्ते गुप्तं	३५
कस्ते बोद्धुं	१	माता तातः	३४
काले कण्ठ	३८	यः स्रष्टारं	१६
किं गूढार्थैं	२७	यद्याकाशं	२६
किं वा कुर्वे	९	यो देवानां	२५
कीटा नागा	३७	विविधमपि	४४
क्षन्तव्यं वा	३०	विहर पितृवने	४६
क्षाम्यस्येव	१२	सर्वं तत्त्वं	१३
क्षित्यादीनां	२	सर्वं सदाशिव	४९
चारुस्मेरा	४०	सर्वज्ञस्त्वं	३१
त्वं वेदान्तै	५	स्वप्ने वापि	४१

नवीनतम प्रकाशन

१ अष्टाङ्गहृदयम्—सटिप्पण-सर्वाङ्गसुन्दरा, आयुर्वेदरसायन व्याख्या सहित । सम्पादक—वैद्य हरिशास्त्री पराड़कर १५०—००

२ ब्रह्मसूत्र-शाङ्करभाष्यम्—सटिप्पण-परिमल, कल्पतरु, भामती व्याख्यात्रय समलंकृतम् । सम्पादक—अनन्तकृष्ण शास्त्री १७५—००

३ कारिकावली—मुक्तावली, दिनकरी, रामरुद्री, व्याख्या सहित शोधपूर्ण संस्करण । संपादक—आत्माराम शर्मा ७०—००

४ अर्थसंग्रहः—लौगाक्षिभास्करप्रणीतः । परमहंस रामेश्वर शिवयोगी भिक्षुवर प्रणीत 'मीमांसार्थसंग्रहकौमुदी' व्याख्या सहित । नारायणराम विरचित टिप्पण्यादि विभूषित ८—००

५ सांख्यकारिका—'युक्तिदीपिका' विवृति सहित सान्वय-'तत्त्वप्रभा' संस्कृत हिन्दी व्याख्या, विमर्शाख्य टिप्पणी विभूषित । सं०—डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी ३०—००

६ उदारराघवम्—कविवर मल्लाचार्य प्रणीतम् । अज्ञातकर्तृक 'विषम-बोधाख्य' टीका सहित । शोधपूर्ण संस्करण ३५—००

७ प्रतापरुद्रीयम्—विद्यानाथविरचितम् । कुमारस्वामि सोमपीथिकृत 'रत्नापण' संस्कृत तथा 'बालक्रीडा' हिन्दी व्याख्या विभूषित ४०—००

८ राजतरङ्गिणी तथा राजतरङ्गिणी संग्रहः—श्री शुक विरचितः । हिन्दी-भाष्यकार—डॉ० रघुनाथ सिंह १००—००

९ ग्रहगति का क्रमिक विकास—(सचित्र) (हिन्दी को सिद्धान्त-ज्योतिष की अनुपम भेंट) ले०—श्रीचन्द्र पाण्डेय ७५—००

१० रसयोगसागरः—सटिप्पण हिन्दी भाषा टीका सहित । वैद्य पंडित हरिप्रपन्न शर्मा । १—२ भाग सम्पूर्ण ४००—००

११ राजनिघण्टुः—नरहरिविरचितः । सविवरण-'द्रव्यगुणप्रकाशिका' हिन्दी व्याख्या सहित । व्याख्याकार—डा० इन्द्रदेव त्रिपाठी । चन्दनादिवर्गान्त प्रथम भाग ५०—००

१२ आयुर्वेदोपयोगी पदार्थ विज्ञान—निरंजनदेव आयुर्वेदालंकार ६०—००

१३ भारतीय भैषज्य कल्पना विज्ञान—(सचित्र) आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी २०—००

प्राप्तिस्थानम्—कृष्णदास अकादमी, पो० बा० ११८, वाराणसी-२२१००१